वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५
विवेक ज्योति
वर्ष ५६ अंक ११ नवम्बर २०१८
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

नवम्बर २०१८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५६
अंक ११

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

नवम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

०६	काली पूजा
०७	लक्ष्मी-पूजन, दीपावली
०९	भाई-दूज
२०	स्वामी सुबोधानन्द
२३	गुरुनानक जयन्ती

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह मूर्ति हरिद्वार (कनखल) स्थित रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम की है।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री आशुतोष जोशी, तलेगाँव, पुणे (महा.)	१,००१/-
श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	५,५००/-
डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा, प्रयाग स्ट्रीट, इलाहाबाद,	१०,०००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५२३.	श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर (छ.ग.)	गवर्नमेंट आर्ट्स एण्ड कॉमर्स पी.जी. कॉलेज, हरदा (म.प्र.)
५२४.	श्री दीपक सुन्दरानी, देवेन्द्र नगर, रायपुर (छ.ग.)	बिट्स लाईब्रेरी, बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी,पिलानी (राज.)
५२५.	,, ,,	पी.के. केलकर लाईब्रेरी, आई.आई.टी. कानपुर (उ.प्र.)
५२६.	,, ,,	सेन्ट्रल लाईब्रेरी, आईआईटी मद्रास, चेन्नई (तमिलनाडु)
५२७.	श्री पीताम्बर सुन्दरानी, देवेन्द्र नगर, रायपुर (छ.ग.)	सेन्ट्रल लाईब्रेरी, मेन बिल्डिंग, आई.आई.टी. खड़गपुर, (प.ब.)
५२८.	,, ,,	सेन्ट्रल लाईब्रेरी, आई.आई.टी. दिल्ली, हौज खास, न्यू दिल्ली
५२९.	स्व. श्रीमती विद्या देवी ईश्वरचन्द्र साहू, करेली छोटी (छ.ग.)	गवर्नमेंट हायर सेकेण्डरी स्कूल, करेली छोटी, जि.धमतरी (छ.ग.)
५३०.	श्री वैभव हंसराज काबरा, उल्हास नगर, ठाणे (महा.)	राजकीय उच्च. मा. विद्यालय, जाजोद खेडा, जिला-सीकर (राज.)
५३१.	श्रीमती उषा हरिलाल चौहान, साकोली, भंडारा (महा.)	शा. बाला साहेब देशपांडे महाविद्यालय, कुनकुरी, जशपुर (छ.ग.)

वर्ष ५६ नवम्बर २०१८ अंक ११

महाकाली-स्तोत्रम्

ॐ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां,
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्।।

– भगवान विष्णु के सो जाने पर मधु और कैटभ को मारने के लिये कमलजन्मा ब्रह्माजी ने जिनका स्तवन किया था, उन महाकाली देवी का मैं भजन करता हूँ। वे अपने दस हाथों में खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शंख धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे समस्त अंगों में दिव्य आभूषणों से विभूषित हैं। उनके शरीर की कान्ति नीलमणि के समान है तथा वे दस मुख और दस पैरों से युक्त हैं।

मेघाङ्गीं विगताम्बरां शवशिवारूढां त्रिनेत्रां परां
कर्णालम्बिनृमुण्डयुग्मभयदां मुण्डस्रजां भीषणाम्।
वामाधोर्ध्वकराम्बुजे नरशिरः खड्गं च सव्येतरे
दानाभीति विमुक्तकेशनिचयां वन्दे सदा कालिकाम्।।

– मैं उन काली की सदा वन्दना करता हूँ, जो मेघवर्ण की हैं और शिव पर आरूढ़ हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जो नर-मुण्डों की माला पहनती हैं और अभय प्रदान करती हैं, जो वाम हाथ में नृमुण्ड और दूसरे में खड्ग धारण करती हैं।

पुरखों की थाती

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पितानियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः।।६१६।।

– तुमने अपने बहुत-से नामों में अपनी सारी शक्ति पूरित कर दी है और उनका स्मरण करने में काल आदि का भी कोई नियम नहीं है। ऐसी तो तुम्हारी कृपा है, परन्तु हे प्रभो, मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि इस जन्म में मुझे उनमें अनुराग ही नहीं हुआ। (चैतन्य महाप्रभु)

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।६१७।।

– घास के तिनके से भी अधिक विनम्र और वृक्ष से भी अधिक सहनशील होकर, अपने अभिमान को त्यागकर और दूसरों को सम्मान देते हुए सर्वदा हरि का संकीर्तन करते रहना चाहिए। (चैतन्य महाप्रभु)

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति।।६१८।।

– हे नाथ, वह दिन कब आयेगा, जब तुम्हारा नाम लेते ही मेरे नेत्रों से अश्रुधारा बह चलेगी, वाणी गद्गद् होकर मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो जायेगा और शरीर रोमांचित हो उठेगा। (चैतन्य महाप्रभु)

विविध भजन

कालिका वन्दन

स्वामी विदेहात्मानन्द

(१)

मुण्डमाला धारिणी

मुण्डमाला धारिणी, कालिके भयहारिणी ।
हृदयपद्म विलासिनी, शोक ताप विदारिणी ।।
युद्ध तेरा मोद है, मृत्यु तेरी गोद है,
घोर तम के बीच भी, ज्योति-वर्षण-कारिणी ।।
शत्रु हैं मेरे प्रबल, दे मुझे उत्साह बल,
साथ रहना सर्वदा, माँ वराभय दायिनी ।।
स्नेह का अमृत पिला, चेतना देकर जिला,
तू सुषुम्ना मार्ग से, ऊर्ध्व पथ संचारिणी ।।

(२)

कौन तुम हर हृदि विलासिनी

कौन तुम हर हृदि विलासिनी ।
श्यामवर्णा रूप अनुपम, निखिल विश्व प्रकाशिनी ।।
देख खप्पर खड्ग कर में,
काँप उठते अरि समर में,
दानवों की रुधिर धारा, पान कर उल्लासिनी ।।
डोलती गल मुण्डमाला,
नृत्य करती हो कराला,
नाश कर खल-असुर-दल का, अट्टअट्ट-हासिनी ।।
वेद शास्त्र पुराण दर्शन,
देखते यह दिव्य नर्तन,
समझ पाया सुत न लीला, मातु भव-भय नाशिनी ।।

रामकृष्ण सुमिरन करता हूँ

कमलसिंह सोलंकी 'कमल'

जीवन भर मैं द्वार तुम्हारे,
निशा दिवस और साँझ सकारे ।
जग के तारन रामकृष्ण
दर्शन की आस किया करता हूँ ।।
दुख हो या घनघोर अँधेरा,
सुख हो या उल्लास घनेरा ।
चिन्ता और चिन्तन के अवसर,
तेरा आभास किया करता हूँ ।।
काम करूँ आराम करूँ मैं,
या जग के संग्राम करूँ मैं ।
हर साँसों उच्छ्वासों में,
तेरा अहसास किया करता हूँ ।।
सफल होऊँ असफलता पाऊँ,
हर हालत न तुम्हें भुलाऊँ ।
शोक शान्ति में परमहंस से,
मिलने का प्रयास किया करता हूँ ।।
माटी का है ये तन मेरा,
साथ न छोड़ूँगा मैं तेरा ।
मन मन्दिर में तुझे बिठा,
तुमसे परिहास किया करता हूँ ।।
युग युग से सम्बन्ध हमारा,
तुम मेरे मैं दास तुम्हारा ।
नाथ मुझे बिसरा मत देना,
काल का ग्रास बना करता हूँ ।।
आठों पहर और साँझ सवेरे,
चिन्तन है चरणों का तेरे ।
चरण कमल वन्दन करके
त्रासों का नाश किया करता हूँ ।।

सम्पादकीय

भयहरणि कालिका

माँ काली की महिमा कालीतन्त्र और अन्य तन्त्रशास्त्रों में वर्णित है। शक्तिमयी अनादि जगदम्बा माँ काली की वन्दना का, उनकी महिमा का वर्णन कर जहाँ स्वरदेवी सरस्वती की गिरा कृतार्थ हुई, वहीं उनकी महिमा जिन शास्त्रों में लिपिबद्ध हुई, वे शास्त्र भी लोक में महिमान्वित हुए। माँ की महिमा को – **को तु ज्ञातुमर्हसि** – कौन जान सकता है? यदि अपनी महिमा वे स्वयं न बोध करा दें, तो कौन कहने में, वर्णन करने में समर्थ है? गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरितमानस में लिखते हैं –

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

संसार के विषय-व्याल-दंशन से त्रस्त प्राणी अपनी असमर्थता और विवशता के कारण विशुद्ध मातृसत्ता की अनुभूति न कर सदा दुख-जाल में आवृत रहता है। जब जग-जननी पराम्बा कृपा कर अपनी महिमा का बोध कराती हैं, तभी भक्त उन्हें कुछ जानने में सक्षम होता है। अपनी इन्हीं अक्षमताओं का बोध करते हुए भक्त काली-क्षमापराधस्तोत्रम् में माँ काली से क्षमा-प्रार्थना करता है –

प्राप्तोऽहं यौवनश्चेद्विषधर-सदृशैरिन्द्रियैर्दष्टगात्री,
नष्टप्रज्ञः परस्त्रीपरधनहरणे सर्वदा साभिलाषः।
त्वत्पादाम्भोजयुग्मं क्षणमपि मनसा न स्मृतोऽहं कदापि,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले।।

हे माँ ! युवावस्था में विषधरेन्द्रयों के दंशन, सदा परस्त्री-परधनहरणाभिलाषी होने से बुद्धिभ्रष्ट हो जाने के कारण मैं तेरे चरणकमलों का कभी मन से स्मरण नहीं कर सका, इसलिये हे कामरूपिणी करालिनी माँ कालिका ! मेरे अपराधों को क्षमा करो।

इतना ही नहीं, भक्त कहता है कि माँ मैं इतना अभागा हूँ कि –

ब्रह्माविष्णुस्तथेशः परिणमति सदा त्वत्पदाम्भोजयुक्तम्
भाग्याभावान्न चाहम्भवजननि भवत्पादयुग्मम्भजामि।
नित्यं लोभप्रलोभैः कृतविशमतिः कामुकस्त्वाम्प्रयासे,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले।।

– माँ ! तेरे चरण-कमलों की ब्रह्मा-विष्णु आदि देवता पूजार्चना करते हैं, किन्तु नित्य लोभ-प्रलोभ, विषयादि से कलुषित बुद्धि होने के कारण मैं दुर्भाग्यवशात् तुम्हारे युगल पादपद्मों का भजन नहीं कर पाता। इसलिये हे कामरूपिणी करालिनी माँ कालिका ! मेरे अपराधों को क्षमा करो।

काली नाम की महिमा

माँ काली के नाम की अमित महिमा होने पर भी दुर्भाग्यवश मानव उनका स्मरण नहीं करता और भव-दुखों से संतप्त रहता है। संसार-दुख की ऐसी अमोघ औषधि होने पर भी वह औषधि हेतु इधर-उधर भटकता रहता है।

समस्त तापों की, सकल भवरोगों की महौषधि है जगन्माता काली का नाम। काली-नाम-स्मरण से आत्यन्तिक दुखनिवृत्ति और परम सुख की प्राप्ति होती है। इसीलिये काली-उपसाक भक्तों और सन्तों ने माँ काली के पावन नाम के स्मरण-भजन का उपदेश दिया। कालीभक्त श्रीरामप्रसाद सेन कहते हैं –

काली काली बोलो रसना
करो पद ध्यान, नाम-सुधा पान,
यदि चाहो वासना से बचना।। ...
प्रसाद बोले ठीक काली काली बोलो,
दूर होगी सब यम-यन्त्रणा।।

श्रीकालिका-सहस्रनामस्तोत्र में काली नाम की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं –

इति श्रीकालिका नाम सहस्रं शिव-भाषितम्।
गुह्याद् गुह्यतरं साक्षात् महापातकनाशनम्।।
यः पठते पाठयेद्वापि शृणोति श्रावयेदपि।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति कालिकापुरम्।।
श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि यः कश्चिन् मानवः स्मरेत्।
दुर्गं दुर्गशतं तीर्त्वा स याति परमां गतिम्।।

काली सहस्रनाम महापापविनाशक है। जो पढ़ता-

पढ़वाता, सुनता-सुनाता है, वह सर्वपापमुक्त होकर कालीधाम जाता है। श्रद्धा-अश्रद्धा से भी जो स्मरण करता है, वह सैकड़ों दुर्गों को पारकर परम गति प्राप्त करता है।

इसलिये अनन्य शरणागत भक्त कभी माँ के चरणों को छोड़कर कहीं नहीं जाते। साधक रामप्रसाद ने तो स्पष्ट कह दिया –

मुझे काशी जाने से क्या काम।
माँ के पदतल में रहते, गया गंगा, काशी धाम।।

भयहरा, अभयप्रदा माँ काली

राजा भर्तृहरि ने जीवन के कटु अनुभवों से सीखा, संसार के विकृत रूप का बोध किया, तब यह निष्कर्ष दिया कि – **सर्वं वस्तु भयान्वितं इह भुवि वैराग्यमेवाभयम्** – अर्थात् इस संसार की सारी वस्तुएँ भयप्रद, भयंकरी हैं, केवल वैराग्य ही अभय है।

माँ काली शत्रुओं के लिए भयंकरा हैं। किन्तु अपनी सन्तानों के लिए सौम्यानना वात्सल्यमयी माता हैं। कालों के काल महाकाल की अधिष्ठात्री देवी महाकाली हैं, जिन्होंने दैत्यों से देवों के रक्षार्थ महाकाली का रूप धारण किया और दैत्यों का वध कर देवों की रक्षा की।

साधक के अन्तस्तल में कुंडली मारकर बैठे विषय-फणियों और काम, क्रोधादि शत्रुओं के सन्ताप से बचाकर अपने शाश्वत आनन्दमय स्वरूप की अनुभूति करानेवाली काली का यह भयंकर रूप बहुत कल्याणकारी है। प्रबल षट्शत्रु-दैत्य सौम्य, सुमधुर वाणी से वशीभूत नहीं होते, बल्कि ये साधक को सदा पथ-च्युत, पद-च्युत कर अपनी सत्ता बनाये रखने का दुष्कर प्रयास करते हैं। जब साधक अपने पुरुषार्थ से क्लान्त होकर माँ के शरणागत हो जाता है, तब माँ अपने इस भयंकरी रूप से इन शत्रुओं का विनाशकर साधक को उच्चावस्था में आरूढ़ कर अपना शाश्वत पद प्रदान करती हैं और उसके नर-जीवन को धन्य कर देती हैं।

श्रीरामभक्त गोस्वामी तुलसीदास जी ने माँ काली की वन्दना में कहा –

जय जय जगजननिदेवि सुर-नर-मुनि-असुरसेवि,
भक्ति–मुक्ति-दायिनी भयहरणि कालिका।।

हे भयाकुल मानव ! संसार का सब कुछ भयप्रद है, केवल अभया माँ के पादारविन्द ही अभय हैं। उनके चरणाम्बुजों में ही जीव को परम शान्ति मिलती है। तभी तो रघुनाथ राय अपने मन को समझाते हैं –

अभयार अभय पदे करो मन सार।
भवभय सब दूरे जाबे रे तोमार।।...
आदिभूता सनातनी चरणे करो रे ध्यान।
ना हइयो अकिंचन आकिंचने बद्धआर।।

हे मेरे मन ! अभया माँ के अभय पद को जीवन का सार बनाओ। इससे तुम्हारे सभी संसार के भय दूर हो जायेंगे। आदिभूता सनातनी माँ के चरणों का ध्यान करो। दीनतारिणी से जुड़कर कभी दीन मत होओ।

भक्ति-मुक्ति-दायिनी काली

माँ काली भक्तों के भय-सन्ताप का नाश कर उन्हें अपनी अचल भक्ति और मुक्ति प्रदान करती हैं। मुक्ति-विधायिनी माँ काली की महिमा की अनुभूति अपने हृदय के अन्तस्तल से करके कालीभक्त रामप्रसाद कहते हैं, जिसका भावार्थ है –

''हे मन क्यों न करे तू मात-चरण चिन्तन।
शक्तिमयी का ध्यान करो पायेगा मुक्ति-धन।।''

माँ भद्रकाली की महिमा का बोध कर दैत्य महिषासुर ने भी उनसे अन्तिम प्रार्थना की थी –

यदि देवि प्रसन्नासि यज्ञभागाश्च कल्पिताः।
तदा ममान्यदा नाश एवमेतद् भवेन्न हि।।
यथाहं न सुरैः सार्धं करिष्ये वैरमद्भुतम्।
तथा मां कुरु भो देवि न जन्म प्रलभे यथा।।
(कालिका पुराण, महिषासुरोपख्यान, पृ-३०६)

– हे देवि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो ...ऐसा कर दीजिये कि मेरा देवों से वैर न हो और मैं दूसरा जन्म न प्राप्त करूँ।''

माँ के परमानन्द सत्ता की रोम-रोम में अनुभूति करनेवाले अनन्य निष्ठावान साधक प्रेमिकजी की व्याकुल प्रार्थना सदा भक्तों के लिये स्मरणीय है –

शोन् माँ तारा भूभारहरा एइ बेला माँ रखछिबोले।
जखन भासबो जले अन्तकाले तनय बोले करिस् कोले।।

हे माँ मेरी विनती सुनो ! जब मैं अन्त समय में भवसागर-जल में डूबने लगूँ, तब तुम मुझे अपनी गोद में ले लेना। सदानन्दमयी मंगलकारिणी माँ काली हम सबको अपने अभय चरण-कमलों में स्थान दें, यही विनती उनके चरणों में। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२३)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

५ जुलाई, मिस मैक्लाउड को

यह स्वर्गीय समुद्रयात्रा एक सप्ताह पूर्व अर्थात् कोलम्बो से रवाना होने के बाद से मेरे स्वास्थ्य की दृष्टि से काफी कष्टकर रही है। मौसम बड़ा ही खराब था, यद्यपि जितना बुरा होने की सम्भावना थी, उतना बुरा नहीं था। भाग्य अच्छा रहा, तो हम लोग शुक्रवार को अदन पहुँच जायेंगे, नहीं तो शायद शनिवार को। स्वामीजी शानदार दिख रहे हैं और भलीभाँति सो रहे हैं। उन्होंने धूम्रपान तथा बर्फ का पानी पीना बन्द कर दिया है – इम्पीरियल गजट पढ़ने में मशगूल हैं और अगले स्थान तक पहुँचने के लिये अधीर हैं। समुद्र की लहरों के हिचकोलों तथा उतार-चढ़ाव से उन्हें जरा भी कष्ट नहीं होता, बल्कि लाभकारी ही होता है। आज सुबह वे मुझसे बोले, "मैंने अपने कन्धों का बोझ पूरी तौर से उतार दिया है!"

परन्तु असुविधा के बावजूद ऐसे मूल्यवान अवसर भी आये हैं कि जिनके लिये मनुष्य समुद्र के पचासों तूफानों को पार करना पसन्द करेगा। कभी वे राजपुताना या किसी भारतीय कहानी से आरम्भ करके उसी में तन्मय हो जाते हैं, परन्तु अब वे बहुधा मुझसे भविष्य तथा कार्य के विषय में बातें करते हैं। पुरानी उदासीनता दूर होती जा रही है; और वे मुझे ऐसा अनुभव कराना चाहते हैं कि सचमुच कोई-कोई चीज मेरे ही ऊपर निर्भर है – वे मेरे भीतर किसी शक्ति का विकास देखने की आशा करते हैं, आदि, आदि। परन्तु ये सब बातें मैं तुम्हारे साथ भेंट होने पर ही बताऊँगी। सर्वदा उनका वही दावा प्रगाढ़तर और विस्तृत होता जाता है – "मैं कुछ विशेष अर्थों में काली की सन्तान हूँ।" परन्तु जिसे मैं सत्य मानती हूँ – जो अब मैं दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट देखती हूँ – वह मैं उन्हें कभी नहीं बताऊँगी – "सन्तान बिल्कुल भी नहीं – बल्कि साक्षात् शिव – दिव्य दम्पती!

एक मधुर बात मैं तुम्हें अवश्य लिखूँगी – ट्रस्टडीड पर हस्ताक्षर नहीं हुआ। ... कल वे मुझसे बोले कि वे उसे माँ के रक्षाकवच के रूप में ले आये हैं; मानो माँ कहना चाहती हैं, "सब कुछ छोड़ देने पर उसे ग्रहण करने योग्य व्यक्ति अब भी यहाँ कोई नहीं है; थोड़े और समय के लिये तुम्हें यह उत्तरदायित्व वहन करना ही होगा।" वे अपने शिष्य के रूप में कितने विराट् तथा शक्तिशाली व्यक्ति को चाहते हैं! "मुझे मनुष्य चाहिये! मुझे मनुष्य चाहिये! मुझे मनुष्य चाहिये! उन्होंने बारम्बार कहा, "तुम जानती हो कि मैंने कभी धन या शक्ति या किसी अन्य वस्तु की इच्छा नहीं की। मैंने केवल मनुष्य चाहे हैं; और वे मुझे मिलने ही चाहिये!"

काली के विषय में मेरे मन में एक नवीन भाव प्रकट हुआ है। यह कलकत्ते के अन्तिम दिन मुझे प्राप्त हुआ था, जब मैं स्वामीजी के साथ एक काली-प्रतिमा के बगल में बैठी थी, जिसे मैंने उठाकर ले जाने से मना कर दिया था।

मेरी दृष्टि लेटे हुए ईश्वर के मतवाले नेत्रों की ओर गयी; और मैंने देखा कि वे सचमुच ही देवी के नेत्रों के साथ मिले हुए हैं। जैसा कि सदानन्द ने कहा था – मैंने देखा कि वे किस प्रकार शिव (स्वामीजी) के दर्शन के अनुरूप जगन्माता हैं। केवल शिव में ही ईश्वरी-सत्ता को इस रूप में देखने का साहस हो सकता है, केवल शिव ही पददलित होकर भी उसी प्रेम की दृष्टि से देखने में समर्थ हैं। सारी बात कितनी स्पष्ट है, समझ रही हो न! ...

तुम्हें कोलम्बो के विषय में भी कुछ बताना उचित होगा। काफी विलम्ब तथा असुविधाओं के बीच दोपहर के बाद हम नौका से नीचे उतरे। इसके बाद क्रमश: हमारा स्वागत तथा अभिनन्दन हुआ। आखिरकार जेटी में गाड़ी पर सवार होकर हमने एक घर में प्रवेश किया, जिसके बाहर ढोल-नगाड़े तथा शहनाइयाँ बज रही थीं। भीतर बड़ी भीड़ थी और मेज पर फल सजे हुए थे। ओह, लोगों की कैसी प्रचण्ड भीड़ थी! और वे लोग स्वामीजी की ओर कैसे देख

रहे थे! – काले-काले लोग – चमकते हुए अनावृत शरीर और गर्मी – परन्तु वे लोग स्वामीजी की ओर ऐसी दृष्टि से देख रहे थे कि मैं उनमें से किसी के लिये कुछ भी कर सकती थी। स्वामीजी ने अपनी यूरोपीय पोशाक की ओर संकेत किया – परन्तु इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। इसके बावजूद वे उन लोगों के अवतार थे। इसके बाद उन्होंने एक छोटा-सा फल खाया और दूध के गिलास से एक चुसकी ली (उस समय भी उसी गिलास में मुझे भी पीने को देना नहीं भूले)।[१] ...

इसके बाद जब वे जाने के लिये मुड़े, तो उस समय की आवाज यदि तुमने सुनी होती – "स्वामीजी की जय! पार्वतीपति की जय!" कान मानो फटने को आ गये थे। जब हम लोग बाहर निकले, तो कितनी भीड़ थी – अवतरण के समय भी भीड़। हमें प्रथम आतिथ्य प्रदान करनेवाली दम्पती असंख्य उपहारों के साथ हमें विदा करने आयी; गृहस्वामिनी लेडी कुमारस्वामी एक अंग्रेज महिला हैं, उनके पति एक तमिल हिन्दू – बड़े अद्भुत व्यक्ति हैं। काफी यूरोपीय भावापन्न हैं। सरकार के प्रशासन-परिषद के ये सदस्य खड़े हो गये और तीन बार उच्च कण्ठ से शिव की जयजय-कार की और उसके बाद तीन बार भीड़ की उच्च ध्वनि – "स्वामी विवेकानन्द जी को नमस्कार!"[२] – के बीच हम लोग स्टीमर से गोलकोण्डा में लौट आये। जहाज में चढ़ने के बाद वहाँ अन्य लोगों ने हमारा स्वागत किया। जब मैं अपने केबिन में गयी, तो यह देखकर मुझे बड़ा आनन्द आया कि मेरे ललाट पर तब भी पूजा का तिलक लगा हुआ था।

१३ जुलाई, मिस मैक्लाउड को

स्वामीजी जगदम्बा के विषय में एक अद्भुत बँगला कविता लिख रहे हैं और मैं सारी सुबह कुछ सज्जन ईसाई मिशनरियों के साथ भारत के विषय में बातें करती रही।

और एक छोटी-सी बात – दोपहर के भोजन के बाद उन्होंने आकर देखा कि एक व्यक्ति की हस्तरेखाएँ देखी जा रही हैं। यथारीति उन्होंने भी अपना हाथ दिखाना चाहा। इसी को लेकर वे थोड़ी देर विनोद करते रहे। तब मैंने अनुरोध किया कि वे मेरी हस्तरेखा पढ़ दें। वे हँस उठे और बोले, "नहीं, मैं हाथ देखना नहीं जानता, परन्तु मैं एक विद्या जानता हूँ जो उससे भी उत्तम है। मैं तुम्हारे सारे अतीत और सारे भविष्य को अपनी आँखों के सामने चलचित्र के समान देख सकता हूँ।" परन्तु वे बोले कि इस क्षमता का उपयोग करने से उनके स्वास्थ्य पर जोर पड़ता है और संन्यासी को इसके उपयोग का अधिकार भी नहीं है। मैं भी वह नहीं चाहती थी। तुम्हें यह सुनकर अच्छा लगेगा, केवल इसलिये तुम्हें बता रही हूँ। ... वैसे मुझे याद आया कि अल्बर्ट के लिये उन्होंने इसका उपयोग किया था। **(क्रमशः)**

---

१. विवेकानन्द का यह साहस अकल्पनीय है। आज के भारतवासी के लिये इस साहस का परिमाण समझाना सम्भव नहीं है। दक्षिण भारत में सबके समक्ष यूरोपीय लोगों के साथ भोजन! जो हिन्दू के रूप में अपना परिचय दे रहे हैं!! भारत के तत्कालीन आचारों के विषय जिन लोगों को कुछ ज्ञात है, वे ही स्वामीजी के इस साहस की महिमा को समझ सकेंगे। यहाँ तक कि समाज-सुधारक लोग भी उन्हें म्लेच्छ के साथ भोजन करते देखकर आतंकित हो गये थे।

भोजन आदि के विषय में स्वामीजी किस प्रकार व्यावहारिक हास-परिहास किया करते थे, उनके शिष्य शरच्चन्द्र चक्रवर्ती ने अपने 'स्वामी-शिष्य-संवाद' ग्रन्थ में इसका एक उदाहरण दिया है। "स्वामी योगानन्द, शिष्य शरच्चन्द्र चक्रवर्ती तथा निवेदिता को साथ लेकर स्वामीजी अलीपुर का चिड़ियाघर देखने गये थे। चिड़ियाघर के सुपरिण्टेण्डेण्ट बाबू रामब्रह्म सान्याल ने उन लोगों का स्वागत किया। रामब्रह्म बाबू के निवासस्थान पर चाय तथा जलपान आदि की व्यवस्था हुई। शिष्य को भगिनी निवेदिता के साथ उसी मेज पर बैठकर उनके द्वारा स्पर्श की हुई मिठाई तथा चाय लेने में संकोच करते देखकर स्वामीजी ने उससे कई बार अनुरोध करके मिठाई खिलायी और स्वयं जल पीकर बचा हुआ जल शिष्य को पीने के लिए दे दिया।

मामला यहीं समाप्त नहीं हुआ। बागबाजार लौट आने के बाद सबके बीच बैठकर स्वामीजी ने व्यंग्य-विनोद करना आरम्भ किया। वे उपस्थित लोगों से बोले, "एक बात सुनी है आप लोगों ने? आज एक भट्टाचार्य ब्राह्मण निवेदिता का जूठा खा आया है। उसकी छुई हुई मिठाई खाई तो खैर, उससे उतनी हानि नहीं; परन्तु उसका छुआ हुआ जल कैसे पी गया!"

वैसे शिष्य ने उपयुक्त उत्तर ही दिया।

शिष्य – आप ही ने तो आदेश दिया था। गुरु के आदेश पर मैं सब कुछ कर सकता हूँ। जल पीने को तो मैं सहमत न था। आपने पीकर दिया! इसीलिए प्रसाद मानकर पी गया।

स्वामीजी – तेरी जाति की जड़ कट गयी है। अब फिर तुझे कोई भट्टाचार्य ब्राह्मण नहीं कहेगा।

शिष्य – न कहे, मैं आपकी आज्ञा होने पर चाण्डाल का भात भी खा सकता हूँ।

२ ये कुमारस्वामी-दम्पती परवर्ती काल में मनीषी तथा कलाविज्ञानी के रूप में विख्यात डॉ. आनन्द के. कुमारस्वामी के पिता-माता थे। परिव्राजक ग्रन्थ में स्वामीजी ने लिखा है, "कोलम्बो के मित्रों ने उतरने का हुक्म ले रखा था, अत: जमीन पर उतरकर बन्धु-बान्धवों से मुलाकात की गयी। सर कुमारस्वामी हिन्दुओं में श्रेष्ठ मनुष्य हैं; उनकी स्त्री अंग्रेज हैं, लड़का नंगे-पैर, सिर पर विभूति। कुमारस्वामी के बगीचे के नींबू, कुछ बड़े नारियल (king coconut), दो बोतल शरबत आदि के उपहार सहित फिर जहाज पर चढ़ा।

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (५/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)
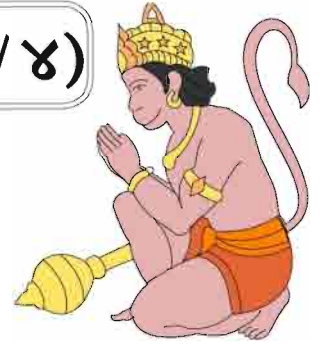
सुग्रीव ने कहा, आप कितनी सुन्दर कथा कहते हैं। उसी कथा के प्रभाव से तो मैं प्रभु की शरण में जा पाया, सारी समस्याओं का समाधान हुआ। तब हनुमानजी ने कहा कि उस दिन मैंने कथा आधी सुनाई थी, आधी अभी बाकी है। कथा पूरी सुननी चाहिए। सुननेवालों को भी ध्यान रखना चाहिए। कथा अगर आधी सुनेंगे, तो संकट में पड़ेंगे। अभिमन्यु बेचारे ने आधी ही कथा सुनी थी न ! जब वे सुभद्रा के गर्भ में थे, तो उस समय जो कथा उन्होंने सुनी थी, वह कथा सुभद्रा के सो जाने से अधूरी रह गई थी। क्योंकि अर्जुन जब कथा सुनाने लगे, तो चक्रव्यूह की रचना होने तक सुभद्रा जग रही थी और जब वे चक्रव्यूह से निकलने की कथा सुनाने लगे, तो सुभद्रा सो गई। मानो कथा अधूरी थी। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में घुसना तो जान लिया, पर निकलना नहीं जाना। हनुमानजी ने भी बहुत बढ़िया बात कही कि प्रभाव की कथा सुनिए, तो स्वभाव की भी कथा सुनिए और स्वभाव की कथा सुनिए तो प्रभाव की भी सुनिए। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। केवल प्रभाव की कथा से मनुष्य के मन में भय उत्पन्न हो सकता है, प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता और केवल स्वभाव की कथा से प्रेम उत्पन्न होता है, भय उत्पन्न नहीं होता। जीवन में दोनों की आवश्यकता है। भय कोई अच्छी वस्तु नहीं है। किन्तु एक संकेत मिलता है, गोस्वामीजी से भगवान ने पूछा कि तुम मुझसे कैसा नाता चाहते हो? तब उन्होंने यही कहा –

सुत की प्रीति प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरिहै।

प्रभु, पुत्र को जैसा प्रेम मिलता है, मित्र को जैसा विश्वास मिलता है, वैसा विश्वास दीजिए और इसके साथ-साथ प्रजा को राजा से जैसे डर लगता है, वैसे मुझे आपका डर भी सदा बना रहे। कितनी बढ़िया बात है ! प्रभु ने पूछा, क्या प्रेम और विश्वास पाने के बाद तुम डर चाहते हो? बोले – महाराज, अगर आपका डर नहीं बना रहेगा, तो मैं प्रेम और विश्वास का भी दुरुपयोग करूँगा। ऐसा होता भी है। इसका अभिप्राय है कि दोनों कथाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। जब हनुमानजी ने सुग्रीव की मैत्री प्रभु से कराई थी, तब प्रभु कितने कोमल हैं, कितने उदार हैं, यह कथा सुनाई थी। पर आज हनुमानजी ने सुग्रीव से कहा, आपने ध्यान दिया कि प्रभु ने जब बालि पर बाण का प्रहार किया, तब वह बाण कहाँ गया? सुग्रीव ने कहा, वह बाण बालि के वक्ष पर लगा और लौटकर पुन: प्रभु के तरकस में चला गया। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि प्रभु अपने आश्रित का कभी भी त्याग नहीं करते हैं। अगर कुछ दूर भेजते भी हैं, तो वापस बुला लेते हैं। भक्तों का भाव यही है। उनकी दृष्टि में अर्थ यही है। बाण को दूर भेजते तो हैं, पर आवश्यकता होने पर बुला भी लेते हैं। ऐसा नहीं कि उसे भेज दिया, तो वह वहीं चला जाय, लौटकर आए ही नहीं।

इसका अर्थ है कि मैंने तुम्हें अपने कार्य के लिए वहाँ भेजा था, पर तुम्हारा स्थान तो मेरे पास ही है, आ जाओ। हनुमानजी ने कहा कि मुझे तो एक दूसरा अर्थ भी लग रहा है। क्या? बोले, प्रभु ने उस बाण को लौटाकर शायद इसलिए भी रखा होगा कि यदि सुग्रीव ने भी बाद में ऐसा ही कुछ किया, तो इसी बाण से उसकी खबर लेंगे। शायद वह बाण आपके लिये रखा हुआ है। बस व्याख्या सुनते ही सुग्रीव घबड़ा गये। व्याख्या पर झगड़ा मत कीजिए कि क्या सही है, क्या गलत। व्याख्या वह सही है, जो आपके हृदय में उचित भाव की उत्पत्ति करे। व्याख्या क्या होती है? बहुत बढ़िया बात गोस्वामीजी ने कही कि भगवान के विषय में जो कुछ भी कहा जाता है, वह क्या कभी तत्त्वत:

पूर्ण हो सकता है? ब्रह्म को वाणी में कोई कैसे लायेगा? जब लायेगा, तो अधूरा लायेगा। जबकि श्रोता तो प्रभावित हो जाते हैं कि वाह ! बड़ी ऊँची व्याख्या है। बड़ी अद्भुत व्याख्या है ! पर जब वह अपूर्ण है और सही नहीं है, तो भगवान सुनते होंगे, तो उन्हें कैसा लगता होगा? तो गोस्वामीजी ने बहुत सुन्दर वाक्य कहा –

एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं। ७/९१/११ (छं.)

वक्ता जो व्याख्या करता है, वह तो बुद्धि का विलास है। वक्ता तो बुद्धि से बोलेगा, तर्क युक्त करके बोलेगा। प्रभु भी यदि बुद्धि से ही सुनकर इन वक्ताओं को ऐसा दण्ड दें कि मेरे विषय में क्या तुम उलटी-पुलटी बातें कहते हो? क्या यही मेरा स्वरूप है? तब क्या होगा। गोस्वामीजी ने बहुत बढ़िया बात कही है। कहने वाला बुद्धि से कहता है, पर वे बुद्धि से नहीं सुनते हैं। तब कैसे सुनते हैं? बोले –

प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं।। ७/९१/१२ (छं.)

प्रभु बुद्धि से नहीं, भाव से सुनते हैं। वे देखते हैं कि भले ही सही नहीं बोल रहा है, पर उसका उद्देश्य तो अच्छा है, भाव तो अच्छा है। भले ही वह अन्त में स्तुति के स्थान पर निन्दा ही कर दे, पर भाव निन्दा का थोड़े ही है, भाव तो इसका अच्छा है। किसी ने प्रभु के लिए कह दिया – **वृषभ कंध के हरि बन।** अर्थात् भगवान के कन्धे बैल के समान हैं। अब इसे प्रशंसा माना जाय कि निन्दा माना जाय। भगवान के कंधे की तुलना बैल से करना, भगवान की कटि की तुलना सिंह से करना, क्या भगवान की सुन्दरता की उपमा के लिए ये सारे पशु ही बाकी रह गये हैं? इसका अर्थ आप यों ले लीजिए। बचपन में मैंने देखा था, मुझे बात याद आ रही है। गाँव के मेले में बच्चों के खिलौने की दुकान से छोटे बच्चे छोटी कड़ाही, कलछी, छोटा चूल्हा खरीद लेते हैं और सब बच्चे बैठकर खेल में उस छोटे-से चूल्हें में लकड़ी के रूप में एक-दो सींक डाल देते हैं, मानो आग जल रही है। चूल्हे पर कड़ाही चढ़ा दी, उसमें थोड़ा बालू डाल दिया और कलछी से चला रहे हैं, मानो सूजी का हलवा बना रहे हैं। थोड़ी देर में हलवा तैयार हो गया। खिलौने की छोटी-सी तस्तरी में ले जाकर पिताजी से कहने लगे, पिताजी खाकर देखिए, मैंने हलवा कैसा बनाया है। अब पिता सचमुच वात्सल्य हृदयवाला होगा, तो यह थोड़े ही कहेगा कि अरे मूर्ख, तू बालू को हलवा कह रहा है, क्या तूने कभी देखा नहीं है कि हलवा किसे कहते हैं? जबकि वह तो नाटक ऐसा करेगा, जैसे चम्मच से हलवा खा रहा है और कहेगा – वाह वाह ! ऐसा हलवा तो मैंने कभी खाया ही नहीं। तो ये जितने सब मुनीश हैं, ये सब बालू का हलवा बनाते हैं और प्रभु उसका वैसे ही आनन्द लेते हैं, जैसे पिता बालक के हलुए की बात सुनकर आनन्द लेता है। क्योंकि – **प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं।** प्रभु भावग्राही हैं।

एक प्रश्न मन में आता है कि यदि व्याख्या सत्य नहीं है, तो फिर कहते ही क्यों हैं? तो उसका उत्तर यह है कि उसका उद्देश्य पवित्र है, कल्याणकारी है। उसका अभिप्राय यह है कि भले ही वह तत्त्वत: सत्य न हो, पर हमारे लिये वह व्याख्या सही है, जो हमारी तत्कालीन मन:स्थिति की प्रेरक हो। व्यक्ति-व्यक्ति की अलग-अलग मन:स्थिति होती है, अलग-अलग समस्या होती है। अगर हर मन:स्थिति के लिए कोई एक पत्थर की लकीर बना दी जाय कि नहीं, बस यही व्याख्या ठीक है, तो यह उचित नहीं होगा।

एक बार कई वक्ता थे। वे आपस में एक-दूसरे का खण्डन करने लगे। ब्रह्मलीन स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने विनोद में हँसकर अकेले में कहा – अब हम इनकी बात को क्या कहें ! ये उत्प्रेक्षा के लिए लड़ रहे हैं कि कौन सही है और कौन गलत है। उत्प्रेक्षा माने? किसी सुन्दर स्त्री को देखकर किसी ने चन्द्रमा से उसकी तुलना कर दी, किसी ने कमल से तुलना कर दी और दोनों लड़ने लगे कि दोनों में कौन ठीक है, तो यह तो नासमझी होती है। तुम सुन्दरता के लिये एक प्रतीक चुनते हो। जबकि इसका अभिप्राय यह है कि जितनी व्याख्याएँ हैं, वे उस व्यक्ति के जीवन में ऐसे भाव की सृष्टि करें, जिससे उसके मन में सद्भाव का उदय हो, सदगुणों का उदय हो। इसीलिए हनुमानजी की व्याख्या बदल गई। भगवान शरणागत-वत्सल हैं, भगवान बड़े कृपालु हैं और इसलिए मैं मनमानी करूँ, अगर यह वृत्ति आ जाय तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा।

कल थोड़ा विलम्ब हो गया, पर श्रद्धेय स्वामीजी ने उस ओर दृष्टि न देकर उदार दृष्टि से देखा। अब मैं यह मानकर कि स्वामीजी तो बड़े उदार हैं और मैं रोज वही करूँ, तो उससे बढ़कर उदारता का दुरुपयोग और क्या होगा? इसका अभिप्राय यह है कि उदारता हमारे मन में सावधानी उत्पन्न

करे, तो उदारता का सदुपयोग है।

सुग्रीव उदारता का दुरुपयोग कर रहे थे। प्रभु ने लक्ष्मणजी को भेजा था सुग्रीव को डर दिखाने के लिये। हनुमानजी ने भी ऐसी ही भयावह व्याख्या कर दी कि –

सुनि सुग्रीवँ परम भय माना। ४/१८/३

हनुमानजी की व्याख्या सुनकर सुग्रीव भय से काँपने लग गये थे। वह दृष्टान्त दिया गया था न कि किसी ने कहा, चलो भाई खा लो, रोग होगा, तो दवाई खा लेंगे। तब तो मनुष्य रोग और दवाई को चलाता ही है साथ में। लेकिन अगर कोई कह दे, यह खाने से मृत्यु अनिवार्य है, यह विष है, खाया और गया, तो फिर व्यक्ति कहाँ छूएगा उसको? यही हुआ सुग्रीव के साथ। वैराग्य की भूमिका क्या है?

सुनि सुग्रीवँ परम भय माना।
बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना।। ४/१८/३-४

सुग्रीव ने कहा, अरे, आपने बड़ी कृपा की। इन विषयों ने मेरे ज्ञान को ढक लिया था और संकेत यही है कि जैसे बादल छा गये हों और हवा का झोंका आकर उन बादलों को उड़ा ले जाय, हटा दे, समाप्त कर दे। हनुमानजी महाराज तो पवनपुत्र हैं ही, सुग्रीव के ऊपर जो विषय का बादल छा गया था, वैराग्य ने आकर हटा दिया।

ज्ञान का दीपक जल जाने के बाद भी यह मत मान लीजिए कि अब भय नहीं है। उसके पश्चात् भी रिद्धि-सिद्धि आयेंगी और प्रेरित करेंगी।

होइ बुद्धि जौं परम सयानी।
तिन्ह तन चितव न अनहित जानी।। ७/११७/९

रिद्धि-सिद्धि की ओर भूल कर भी दृष्टि न डालें। किसी ने कहा कि रिद्धि-सिद्धि आईं और वे प्रलोभन दिखाकर चली गईं। चलिए, अब तो निश्चिन्त हो जायँ। कहते हैं, अब भी निश्चिन्त मत होइए। अब क्या होगा? ज्ञान-दीपक में बताया गया कि भई, कोई चोर हो, डाकू हो और आपके पास दृढ़ दरवाजे-खिड़खियाँ हों, तो उन्हें कसकर बन्द कर दीजिए। हो सकता है, उसको तोड़कर चोर न आ सके। पर क्या विलक्षण बात कहते हैं ! यदि आपके दरवाजे का पहरेदार ही चोरों से मिला हुआ हो, तब क्या होगा? वह कौन-सा पहरेदार है, जो चोरों से मिला हुआ है?

इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई।
बिषय भोग पर प्रीति सदाई।। ७/११७/१५

ये जो देवता हैं, ये किसी का ज्ञानी बनना पसन्द नहीं करते। सोचते हैं कि यह उठा तो हमसे ऊपर चला जायेगा, हमें महत्त्व ही नहीं देगा।

आवत देखहिं बिषय बयारी।
ते हठि देहिं कपाट उघारी।। ७/११७/१२

जब वे विषय का झोंका आते देखते हैं, आँधी आते देखते हैं, तो वे इन्द्रियों के दरवाजे को खोल देते हैं। तब क्या करें? किसी ने कहा कि अग्नि के द्वारा दूध को पकाइए और क्षमा की वायु के द्वारा उस दूध को ठंडा कीजिए। उसके बाद धृति का जामन देकर उसका दही जमाइए। तब विचार की मथानी के द्वारा मुदित वृत्ति से मंथन कीजिए। तब आयेगा वैराग्य। यह सब पढ़कर व्यक्ति आतंकित हो जाता है। इसमें से एक-एक गुण बहुत कठिन हैं – श्रद्धा आये, सत्कर्म आये, भावना आये, विश्वास आये, अहिंसा आये, निष्कामता आये, तो बचा क्या? कहते हैं, जब प्रयत्न करेंगे –

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।
बिमल बिराग सुभग सुपुनीता।। ७/११६/१६

तब कहीं जाकर इतना होने के बाद वैराग्य होता है। पर आनन्द तो तब आया, जब किसी ने तुलसीदासजी महाराज से पूछ दिया कि महाराज, अब तो हो गया न ! अब तो कुछ बाकी नहीं रहा। आपने जो बताया, उसे तो रामायण में लिख ही दिया गया –

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक। ७/११८(ख)

उन्होंने कहा, नहीं भाई, मक्खन खाना हो, तो खा लिया जाता है और उसका उपयोग कर लिया जाता है। बम्बई में ज्ञान-दीपक की व्याख्या चल रही थी, तो एक महिला ने व्याख्या सुनकर अपनी साथ वाली महिला से यही कहा, मक्खन तो बहुत बढ़िया निकल गया, चलो बढ़िया रोटी में लगाकर आनन्द से इसी का भोजन किया जाय। ठीक है, मक्खन खाने का ही उद्देश्य हो, तो खाइए, पर अगर ज्ञान का दीपक जलाना है, तो मक्खन से तो दीपक नहीं जलेगा । दीपक जलाने के लिए तो उसे घी बनाना पड़ेगा। घी बनाने के लिए उसे कड़ाही में डालकर पकाना पड़ेगा। तब जाकर वह घी बनेगा। वैराग्य का मक्खन जब तक ज्ञान का घी नहीं बनेगा, तब तक ज्ञान कैसे होगा? **(क्रमशः)**

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (११)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

बड़ौदा

नर्मदा-संगम से बड़ौदा लौटकर मैंने वहाँ एक सद्‌गोप के घर में रात बितायी। अगले दिन महाराष्ट्रीय ब्राह्मण-लोग कहने लगे, "आप दण्डी संन्यासी होकर भी एक शूद्र के घर में क्यों ठहरे हैं?" वे लोग मुझे वहाँ से एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के घर में ले गये और बड़े प्रेम से रखा, परन्तु वह मकान बड़ा गन्दा था, अत: मैं एक उपयुक्त निवास की खोज करने लगा।

बड़ौदा राज्य में शिव तथा विष्णु के मन्दिरों में साधुओं के रहने की कोई व्यवस्था नहीं है। नगर में एक अच्छा घर देखकर ऐसा लगा कि इसी मकान में रहने से अच्छा होता। वह बड़ौदा स्टेट का भवन था। उसमें एक उच्च पदस्थ बंगाली अधिकारी निवास करते थे। उस समय वे घर में नहीं थे।

मैं उनकी खोज में चल पड़ा। उनके साथ भेंट होने पर वे बड़े प्रेम के साथ मुझे घर ले आये और बोले, "मैं अकेला रहता हूँ। बहुत-से कमरे खाली पड़े हैं, आप जिसमें खुशी हो, उसमें रह जाइये।"

इतना कहने के बाद उन्होंने एक व्यक्ति को मेरे लिये फल-मिठाइयाँ लाने भेजा और मुझसे पूछा, "आप क्या जाति-भेद मानते हैं?" मैं बोला, "नहीं, वह भला कैसे हो सकता है? क्योंकि मैं संन्यासी हूँ न !" बाबू ने नौकर को खाना लाने से मना करते हुए कहा, "तो फिर बाजार की चीजें क्यों खायेंगे? मेरे साथ ही खाइयेगा।" मैंने हामी भरी। परन्तु जब भोजन आया, तो भोजन परोसनेवाले को देखकर मेरा सिर घूम गया। वह एक गोवा-निवासी ईसाई था। उसकी वेश-भूषा तथा आचरण आदि देखकर मेरे मन में महा विघ्न उत्पन्न हुआ, भूख-प्यास सब दूर भाग गयी। पहले चाय आयी। मैंने किसी प्रकार उसका एक घूँट गले के नीचे उतारा। परन्तु उस अमृत बाँटनेवाले का हाथ याद आते ही मेरा सारा शरीर संकुचित हो उठा। इसके बाद अन्न-व्यंजन आ पहुँचे। मैं बैठकर सोच रहा था कि अब कैसे उठूँ। वे बाबू भी मेरे साथ ही खाने को बैठे थे और अचानक मेज छोड़कर उठ जाना बड़ी अभद्रता का सूचक था। परन्तु मेरा पेट उस भद्रता के साथ समझौता करने को राजी न था, कहने लगा, "यदि तुमने इस अन्न-व्यंजन का एक भी कण मेरी ओर भेजा, तो तुमने अन्नप्राशन के समय किस प्रकार अन्न खाया था, उसे मैं सभ्य समाज के सामने प्रकट कर दूँगा।" आखिरकार बाध्य होकर मैं उन बाबू से बोल उठा, "महाशय, मैं तो नहीं खा सकता, मेरा शरीर कैसा-कैसा कर रहा है, मुझे उठना पड़ रहा है।" बाबू ने विस्मित नेत्रों के साथ मेरे मुख की ओर देखा और गम्भीर स्वर में बोले, "ओह, आप अब भी नहीं खा सकते, आपमें अब भी जाति-भेद है।"

मैं बोला, "जी हाँ, हो भी, तो हुआ करे।" इसके बाद व्यवस्था हुई कि मैं उन महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के घर भोजन करूँगा और सोना-बैठना बाबू के घर में ही होगा।

अहमदाबाद, जूनागढ़, प्रभास, द्वारका, कच्छ-माण्डवी

लगभग एक पखवारा बड़ौदा में निवास करने के बाद मैंने अहमदाबाद की यात्रा की। बाबू ने टिकट खरीद दिया था। अहमदाबाद में एक साधु के साथ भेंट हुई। उन्होंने मुझे रेलगाड़ी में चढ़ा दिया और कहा कि मैं जहाँ भी उतरना चाहूँगा, वहीं उतरवा देंगे।

वाधवान जंक्शन पर उतरकर एक सज्जन से भेंट हुई। उनसे पूछने पर पता चला कि विवेकानन्द नाम के एक महाविद्वान साधु जूनागढ़ में निवास कर रहे हैं। परिचित साधु ने जूनागढ़ का टिकट खरीद दिया।

जूनागढ़ में आकर समाचार मिला कि स्वामीजी चार-पाँच दिनों पूर्व ही पोरबन्दर होते हुए द्वारका की यात्रा पर गये हैं। जूनागढ़ के द्रष्टव्य स्थानों को देखने के बाद मैं प्रभास तीर्थ में गया। प्रभास-दर्शन के बाद मैं वेरावल से स्टीमर में सवार होकर द्वारका की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर पता चला कि स्वामीजी बेटद्वारका की यात्रा पर गये हैं। द्वारका

में एक रात निवास करने के बाद अगले दिन मैं वहीं जा पहुँचा । वहाँ सूचना मिली कि वेरावल में कच्छ-भुज के राजा ने स्वामीजी को अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया है । स्वामीजी कच्छ-माण्डवी चले गये थे । तत्काल ही मैं भी कच्छ-माण्डवी की ओर चल पड़ा ।

स्वामीजी की इतनी खोज करने के बाद भी उन्हें न पाकर उन्हें देखने का मेरा आग्रह इतना बढ़ गया था कि उन सभी तीर्थों का दर्शन आदि कुछ न करते हुए मैंने माण्डवी की यात्रा की । वहाँ सुनने में आया कि स्वामीजी नारायण-सरोवर गये हैं । माण्डवी में एक रात निवास करके अगले दिन पैदल ही मैं नारायण-सरोवर की ओर चल पड़ा ।

नारायण-सरोवर की ओर

माण्डवी से चार कोस दूर एक गाँव में एक गृहस्थ बोले, "महाराज, रास्ते में अभी डकैतों का भय है । स्वामी विवेकानन्द राजा के लोगों को साथ ले गये हैं । तुम अकेले किस प्रकार जाओगे?" मैं बोला, "मैं अकिंचन हूँ । डकैत मेरा क्या लेंगे?" इस पर ग्रामवासी ने कहा, "ठीक है, एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिये तुम्हें बैलगाड़ी मिल सकती है और एक पथ-प्रदर्शक को क्यों नहीं ले लेते?" वैसा ही हुआ ।

एक बालक पथ-प्रदर्शक हुआ । जाते-जाते सोचने लगा कि यदि डकैत ने मुझे पकड़ा, तो कहूँगा, "मेरा सब ले लो, मुझे मारो मत ।" परन्तु मैं कच्छ की भाषा नहीं जानता था और यदि वे लोग हिन्दी भाषा न समझें तो? मैंने पथ-प्रदर्शक बालक से पूछा, "मेरा सब कुछ ले लो, परन्तु जान से मत मारो – इसे कच्छी भाषा में कैसे कहेंगे?" वह बोला, "बाबाजी, तुम कहना – मेड़े गनो, मेड़े गनो, मुँके मारयो मूँ ।" मैं इस वाक्य को कण्ठस्थ करते हुए चलने लगा ।

दुर्भाग्यवश अगले गाँव में पथ-प्रदर्शक के लिये विलम्ब होता देखकर मैंने बालक को विदा किया और अकेले ही यात्रा शुरू की । पच्चीस कोस तक निर्विघ्न चलता रहा । नारायण-सरोवर के लिये अब केवल पन्द्रह कोस रास्ता ही बाकी था, परन्तु इस पच्चीस कोस के बाद अकाल के कारण अधिकांश गाँव खाली पड़े थे ।

क्रमश: संध्या हो जाने पर एक गाँव में लोगों को देखकर मैंने वहीं रात्रिवास किया । उस गाँव से नारायण-सरोवर सात कोस दूर था और उधर जाने के दो मार्ग थे – एक गाड़ी से जाने का और दूसरा पैदल चलने का । पैदल का रास्ता केवल छह कोस था । वह सुरक्षित था और बीच में एक गाँव भी था । नारायण-सरोवर को पैदल जानेवाले लोग इसी मार्ग से आवागमन करते हैं । परन्तु गाड़ी का मार्ग बिल्कुल निर्जन था और उसके आसपास कोई बस्ती न थी । अत: पैदल मार्ग से जाना ही अधिक उत्तम था । परन्तु मेरे मन में आया कि स्वामीजी गाड़ी में गये हैं और गाड़ी में ही लौटेंगे । मेरे पैदल रास्ते से वहाँ पहुँचने के पूर्व ही यदि वे गाड़ी के रास्ते से लौट पड़े, तो फिर जिनके लिये मैं इतनी दूर आया हूँ, वे केवल सात कोस दूरी पर हैं और उन्हें इतने निकट पाकर भी फिर खो बैठूँगा । अत: मेरे लिये गाड़ी वाले मार्ग को पकड़ना ही अधिक उत्तम होगा ।

मुझे उस मार्ग पर चलते देखकर एक दुकानदार बोला, "उस मार्ग पर तुमको कोई बस्ती नहीं मिलेगी । दोपहर के समय तुम्हें जमनवारा तालाब मिलेगा, वहीं स्नान कर लेना । तुम्हारे जलपान के लिये थोड़ा-सा गुड़ और भुने हुए चावल दे देता हूँ ।"

यहीं से उत्तर-पश्चिमी प्रदेश का एक तीर्थयात्री 'भगत' मेरे साथ हो लिया । मैं बोला, "तुम क्यों इस डकैतों के मार्ग से आ रहे हो?" भगत बोला, "तुम्हारे सत्संग से बड़ा आनन्द मिला है ।" भगत उत्तर-पश्चिमी प्रदेश का निवासी होने पर भी बड़ा ही गरीब था। उसके साथ केवल एक फटी हुई दुमुँही थैली थी । दोनों चलने लगे ।

दोनों तरफ खुला मैदान था । मनुष्यों का कोई नामो-निशान न था, किसी गाँव का चिह्न तक न था । दोपहर के समय हम दोनों उसी पूर्वोक्त सरोवर के पास जा पहुँचे । दोनों ने स्नान किया और दुकानदार द्वारा दिये हुए भुने हुए चावलों तथा गुड़ को आपस में बाँटकर खा लिया । भुने चावल खाने के बाद भगत बोला, "महाराज, दो टिक्कड़ (मोटी रोटी) लगा लूँ ।" सुनकर मैं अवाक् रह गया, मैंने कहा – यहाँ भला टिक्कड़ कहाँ मिलेगा ! "टिक्कड़ लगाने के लिये मैदा कहाँ से आयेगा?"

भगत ने जादूगर के समान उस फटी थैली के भीतर से ही आधा सेर आटा, तवा, नमक आदि सब बाहर निकाला और थोड़ा-सा इधर-उधर घूमकर सूखा हुआ गोबर भी जुटा लिया । देखते-ही-देखते निपुण भगत ने टिक्कड़ बना लिये ।

हम दोनों गुड़ के साथ उन्हीं रोटियों को खा रहे थे कि उसी समय कुछ भेंड़-बकरियों को लिये हुए एक चरवाहा

शेष भाग पृष्ठ ५०६ पर

अनावश्यक टेन्शन

स्वामी मेधजानन्द

जब बच्चे थे, तब स्कूल में समय पर पहुँचने का टेन्शन, होमवर्क करने का टेन्शन, परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास होने का टेन्शन, युवावस्था में नौकरी मिलने का टेन्शन और विवाह के बाद तो दुनिया-भर के टेन्शन – सिर के बाल पक कर कब उड़ जाते हैं, पता ही नहीं चलता।

एकबार दो मित्र किसी घने जंगल से जा रहे थे और मार्ग भटक गए। उनमें से एक मित्र बड़ी चिन्ता में पड़ गया अथवा आजकल की भाषा में कहें, तो टेन्शन में आ गया। परेशानी के मारे उसका दिमाग काम नहीं कर रहा था। उसके मन में तरह-तरह के नकारात्मक विचार आने लगे, जैसे कि इस जंगल की भूल-भुलैया में जंगली-जानवर उसे खा जाएँगे, उसकी मृत्यु हो जाएगी इत्यादि। उसके दूसरे मित्र को भी लगा कि सचमुच इस जंगल में वे बुरी तरह से मार्ग भटक गए हैं। उसे थोड़ी चिन्ता अवश्य हुई, किन्तु वह ठंडे दिमाग से जंगल से बाहर जाने का मार्ग खोजने लगा। उसने जमीन पर लोगों के पैरों के चिह्न देखे। उन पदचिह्नों के अनुसार वे मित्र जाने लगे। फिर उन्हें कटे हुए पेड़ों को घसीटते लेकर जाने के चिह्न दिखे। उसके सहारे वे आगे चलते गए और अन्ततः घने जंगल से बाहर आ गए।

सुख-दुख, प्रकाश-अन्धकार, सर्दी-गर्मी इत्यादि जीवन के द्वन्द्व हैं। जिस प्रकार सृष्टि में ऋतुएँ बदलती रहती हैं, उसी प्रकार जीवन में द्वन्द्वात्मक अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं और जाती हैं। प्रतिकूल परिस्थिति में हम चिन्तित और व्यग्र हो जाते हैं। किन्तु ये प्रतिकूल परिस्थितियाँ ही हमें शक्तिशाली, ऊर्जावान और अनुभवी बनाती हैं। मानवीय व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए इन दोनों की आवश्यकता होती है। देखा जाए, तो हमारा मन ही अमुक स्थिति को अनुकूल बनाता है और अमुक स्थिति को प्रतिकूल। धैर्यवान व्यक्ति प्रत्येक स्थिति को चुनौती मानकर उसमें मानवीय उत्कर्ष की सम्भावनाएँ ढूँढ़ता है। व्यक्ति जब धैर्य खो बैठता है, तभी चिन्ताग्रस्त हो जाता है।

बाह्य परिस्थितियाँ हमारे ऊपर हावी न हों, इसका उपाय स्वामी विवेकानन्द बताते हैं, ''तुम आत्मनिरीक्षण कर देखो, तो पाओगे कि ऐसी एक भी चोट तुम्हें नहीं लगी, जो स्वयं तुम्हारी ही की गई न हो। आधा काम तुमने किया और आधा बाहरी दुनिया ने, और इस तरह तुम्हें चोट लगी। यह विचार हमें गम्भीर बना देगा। और साथ ही, इस विश्लेषण से आशा की आवाज आएगी, 'बाह्य जगत् पर मेरा नियन्त्रण भले न हो, पर जो मेरे अन्दर है, वह मेरा अन्तर्जगत मेरे अधिकार में है। यदि असफलता के लिए इन दोनों के संयोग की आवश्यकता होती हो, यदि चोट लगने के लिए इन दोनों का इकट्ठे होना जरूरी हो, तो मेरे अधिकार में जो दुनिया है, उसे मैं नहीं छोड़ूँगा, फिर देखूँगा कि मुझे चोट कैसे लगती है? यदि मैं स्वयं पर सच्चा प्रभुत्व पा जाऊँ, तो चोट कभी नहीं लग सकेगी।''

चिन्ता एवं तनाव में जो कुछ भी अन्तर हो, किन्तु दोनों का परिणाम मन की अस्वस्थता है। मन यदि स्वस्थ रहे, तो हमारी कार्यक्षमता अधिक हो जाती है। जब कोई कठिन कार्य अचानक आ जाए अथवा कोई समस्या आ जाए, तो चिन्ता का आना स्वाभाविक है। किन्तु यदि हम शान्तचित्त से परिस्थिति को सँभालते हैं, तो जिस ऊर्जा का अपव्यय चिन्ता में होने वाला था, वह ऊर्जा संचित हो जाती है और हम आसानी से समस्या का हल करने में सक्षम होते हैं। बहुत बार चिन्ता करने से सामान्य स्थिति भी विकट हो जाती है।

चिन्ता की व्याख्या एक संस्कृत सुभाषित द्वारा की गई है:

चिता चिंता समा प्रोक्ता बिंदुमात्रं विशेषता।
सजीवं दहते चिंता निर्जीवं दहते चिता।।

– अर्थात चिंता और चिता लगभग समान ही हैं, किन्तु उनमें बिन्दु मात्र का अन्तर है। चिता तो मृत व्यक्ति को ही जलाती है, किन्तु चिन्ता जीवित व्यक्ति को जलाती है।

चिन्ता अथवा तनावग्रस्त व्यक्ति रोग से भी शीघ्र प्रभावित हो जाते हैं। किसी भी तरह यदि एकबार समझ में आ जाए कि चिन्ता अथवा टेन्शन से परिस्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती है, तो हम अपने-आप सब कार्य शान्त और स्वस्थ मन से करेंगे। स्वामीजी कहते हैं, ''जब मन शान्त और समाहित होता है, तभी हम उसकी समस्त ऊर्जाओं को अच्छे कार्यों में लगा सकते हैं और यदि तुम विश्व के महान व्यक्तियों का जीवन पढ़ोगे, तो तुम्हें समझ में आएगा कि वे अद्भुत शान्त व्यक्ति थे। कोई भी परिस्थिति उन्हें अपनी सन्तुलित अवस्था से विचलित नहीं कर सकी।'' सबसे कारगर उपाय यह है कि हम भगवान से शक्ति, बल और आत्मविश्वास की प्रार्थना करें। इसके अलावा कुछ परिस्थितियाँ हमारे हाथ में नहीं होती हैं। तब भगवान पर भरोसा रखकर हम धीर और स्थिर रहने का प्रयत्न कर सकते हैं। OOO

नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) रायपुर में जहाँ रुके थे : कुछ तथ्य

देवाशीष चित्तरंजन रॉय, गोंदिया (महाराष्ट्र)

(श्री देवाशीष चित्तरंजन राय जी ने दीर्घ ११ वर्षों तक नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) तथा उनके कुटुम्बीजन की कलकत्ता से नागपुर होकर रायपुर यात्रा, रायपुर में उनके आवास एवं अन्य विषयों पर गहन शोध किया है। इस विषय पर अनेक पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों में इनके लेख प्रकाशित हो चुके हैं। विवेक ज्योति के सितम्बर, २०१८ के अंक में इनके द्वारा लिखित स्वामीजी की रायपुर तक की यात्रा का लेख प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत लेख उनके शोध का अंशमात्र है। सं.)

स्वामी विवेकानन्द के अनेक जीवनीकारों ने उनकी नागपुर से रायपुर यात्रा का मार्मिक वर्णन किया है। स्वामीजी के बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त एवं माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। १८७७ में वकीली के काम से विश्वनाथ दत्त रायपुर (तत्कालीन मध्य प्रान्त) में स्थानान्तरित हुए। रायपुर में कार्य का स्वरूप देखते हुए श्री विश्वनाथ दत्त ने अपने परिवार को यहाँ लाने का निर्णय लिया। नरेन्द्रनाथ तब आठवीं (उन दिनों की तीसरी) कक्षा में पढ़ रहे थे।

भारत देश तब ब्रिटिश सत्ता के अधीन था। शुरुआत में प्रशासनिक दृष्टि से ब्रिटिश शासनान्तर्गत भारत तीन प्रान्तों में विभक्त था – बॉम्बे, मद्रास और बंगाल। इसके बाद बिहार एवं उड़ीसा को भी जोड़ दिया गया था। इन प्रान्तों को उस समय रेग्यूलेटेड प्रोविन्स कहा जाता था। इनकी न्याय व्यवस्था ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत थी। ब्रिटिश सत्ता अपनी प्रशासन व्यवस्था का विस्तार अन्य राज्यों में भी करती जा रही थी। इन नए राज्यों को नान-रेग्युलेटेड प्रोविन्स कहा जाने लगा, जिन्हें तत्कालीन ब्रिटिश सरकार धीरे-धीरे रेग्युलेटेड करना चाहती थी। इन प्रान्तों के नाम थे – पंजाब, असम, सेन्ट्रल प्रोविन्स, औंध इत्यादि ।

रायपुर शहर तत्कालीन मध्य प्रान्त अर्थात् सेन्ट्रल प्रोविन्स में आता था। स्वामी विवेकानन्द के पिता विश्वनाथ दत्त का कार्यक्षेत्र उस समय नान-रेग्युलेटेड प्रोविन्स के अन्तर्गत था। १८७९ की बंगाल डायरेक्टरी के पृष्ठ क्रमांक २८५ में छत्तीसगढ़ के रायुपर क्षेत्र में विश्वनाथ दत्त, भूतनाथ डे एवं मन्मथनाथ सेन का नाम दिया गया है। यहाँ दिए गए चित्र में उनका नाम रेखांकित है।

THE BENGAL DIRECTORY,
1879.

PUTTIALLA—An Independent State in the Punjab

RAEPORE—In the Chutteesgurh Division.

(१८७९ की बंगाल डायरेक्टरी के पृष्ठ क्रमांक २८५ में छत्तीसगढ़ के रायुपर क्षेत्र में विश्वनाथ दत्त, भूतनाथ डे एवं मन्मथनाथ सेन का नाम)

१८७७ में स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्रनाथ) की माता भुवनेश्वरी देवी, उनके भाई-बहन महेन्द्रनाथ और योगिन्द्रबाला (पुराने हावड़ा स्टेशन) रेल से लम्बी यात्रा करते हुए कलकत्ता से नागपुर और बाद में रायुपर आये । इस यात्रा में उनके साथ रायपुर के वकील श्री रायबहादुर भूतनाथ डे, उनकी पत्नी श्रीमती एलोकेशी देवी और छह माह के पुत्र हरिनाथ डे थे।

स्वामीजी के पिता विश्वनाथ दत्त एवं वकील भूतनाथ डे पहले से ही रायपुर में निवास कर रहे थे। श्री भूतनाथ डे मेट्रोपोलिटन पाठशाला, कलकत्ता में नरेन्द्रनाथ के अध्यापक थे। वे उच्च माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ाते थे। १८७६ में उन्होंने बी.एल. की परीक्षा पास की थी और उसी वर्ष उनका विवाह हुआ था। १८७७ के प्रारम्भिक दिनों में वे रायपुर स्थानान्तरित हुए। प्रोफेसर डे बाद में

अनुभवी वकील हुए। १८८८ में उन्हें रायबहादुर की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। स्वामीजी जब नागपुर से रायपुर यात्रा कर रहे थे, उस समय भूतनाथ डे के पुत्र हरिनाथ डे की आयु छ: महीने थी। हरिनाथ डे जी का जन्म १२ अगस्त, १८७७ में हुआ था। इसका अर्थ है कि वे १८७७ के अन्त में रायपुर पहुँचे थे।

स्वामी विवेकानन्द के भ्राता महेन्द्रनाथ दत्त जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि वे भूतनाथ डे के साथ एक ही मकान में रहते थे। अर्थात् डेढ़ वर्ष की समयावधि में वे सर्वप्रथम कुछ दिनों के लिए भूतनाथ डे के घर रुके थे। इसके बाद वे मणिभूषण (मणिमोहन) सेन के यहाँ स्थानान्तरित हुए। वे मन्मथनाथ सेन के सम्बन्धी थे।

स्वामी विवेकानन्द रायपुर में निश्चित कहाँ रहे थे, इस विषय में कई अनुसन्धान हुए हैं। इस विषय का पुन: गहन अध्ययन कर यहाँ तथ्यों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के तत्कालीन महासचिव का पत्र

स्वामी आत्मानन्द जी महाराज १९५९ में रायपुर में आए थे। उन्होंने इस विषय में काफी जानकारियाँ प्राप्त की थीं। इस विषय में राय बहादुर भूतनाथ डे चैरिटेबल ट्रस्ट, डे भवन, रायपुर की आभा बोस को रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन सचिव स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज ने पत्र लिखा था। अंग्रेजी में लिखे इस पत्र की प्रति यहाँ दी गई है। हिन्दी में इसका अनुवाद इस प्रकार है :

RAMAKRISHNA MISSION

Ref:Genl/23
24.12.1995

Dear Smt Bose,

This is in reply to your letter of the 11th December.

Revered Gambhiranandaji did not mention the address of Swamiji's residence at Raipur. Other authentic biographies too are more or less silent on this. Only Mahendranath Dutta in his book 'Srimat Vivekananda Swamijir Jiboner Ghatanaboli: Volume 1', mentions that Narendranath along with his mother and other family members went to Raipur via Nagpur. His father had gone there in connection with a law suit. Finding that he would have to continue there for some, he brought the family there. Mahendranath Dutta's claim that Bhutnath Babu accompanied Swamiji, his mother and others to Raipur is not tenable perhaps.

When the Government of Madhya Pradesh tried to acquire the house of Mani Bhusan Sen in Budha Para, several letters protesting the Government decision appeared in the newspaper. A copy of one such report is enclosed. After studying all available literature and also depending on the search made by late Swami Atmananda, we have come to the following conclusion :

a) When Biswanath Dutta came to Raipur first, he stayed with late Bhutnath Dey, father of Harinath Dey, the great linguist, for somedays.

b) But when Biswanath Dutta brought his family, he shifted to the house near the present Chotapara School. This has been questioned by several old residents. Late Swami Atmananda came to the conclusion, however, that Swamiji stayed with his father in a house near Mani Bhusan Sen's house. That house at present stands divided into three parts, one part is owned by Mr.Jha, an advocate, second part by his father-in-law and the third part remaining closed for a long time is now in the possession of one Shri A.Ahmedji Bhai. It is claimed that in the third part of the house Swamiji stayed for nearly one and half years.

Therefore, in all probability, Swamiji stayed in the house of Bhutnath Dey along with his father for a short time and afterwards the Dutta family shifted to the house mentioned above.

Hope the position is now clear to you.

With best wishes.

Yours sincerely,

(Swami Atmasthananda)
General Secretary

Encl: As stated

Smt Abha Basu
Rai Bahadur Bhut Nath Dey
Charitable Trust
Dey Bhavan, Kalibadi Road
Budhapara
Raipur 492 001(M.P.)

दिनांक – २४-१२-१९९५, Ref/Genl/२३

श्रीमती बोस जी,

यह पत्र आपके द्वारा लिखित दिनांक ११ दिसम्बर के पत्र का प्रत्युत्तर है।

पूज्य (स्वामी) गम्भीरानन्दजी ने स्वामीजी के रायपुर स्थित निवास का उल्लेख नहीं किया है। अन्य विश्वस्त जीवनियाँ भी इस विषय में प्राय: मौन हैं। केवल महेन्द्रनाथ दत्त ने अपनी पुस्तक ''श्रीमत् विवेकानन्द स्वामीजीर जीबनेर घटनाबली - खण्ड १'' में इसका उल्लेख किया है कि नरेन्द्रनाथ अपनी माताजी एवं अन्य परिजनों के साथ नागपुर के रास्ते से रायपुर गये थे। उनके पिता वहाँ एक मुकदमे के सिलसिले में गये थे। यह जानकर कि उन्हें वहाँ कुछ अधिक समय तक रुकना पड़ सकता है, इसलिए वे अपने परिवार को वहाँ ले आये। महेन्द्रनाथ दत्त का यह कथन कि भूतनाथ बाबू (भी) स्वामीजी, उनकी माता एवं अन्य लोगों के साथ रायपुर गये थे, संभवत: सत्य प्रतीत नहीं होता।

जब मध्यप्रदेश सरकार ने मणिभूषण सेन के बूढ़ापारा स्थित आवास के अधिग्रहण का प्रयास किया, तब सरकार के इन निर्णय के विरोध में बहुत-से पत्र समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुए। ऐसी एक रिपोर्ट की प्रति संलग्न है।

सभी उपलब्ध साहित्य के अध्ययन के बाद एवं स्वामी आत्मानन्द द्वारा किये गये अनुसन्धान के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचे हैं :

१. जब विश्वनाथ दत्त प्रथम बार रायपुर आये, तो वे स्वर्गीय भूतनाथ डे के साथ रहे, जो महान् भाषाविद् हरिनाथ डे के पिता थे।

२. परन्तु जब विश्वनाथ दत्त अपने परिवार को ले आये, तो उन्होंने अपना निवास वर्तमान छोटापारा विद्यालय के समीप स्थानान्तरित कर लिया। बहुत से पुराने निवासियों ने इस पर प्रश्न उठाये हैं। तथापि स्वामी आत्मानन्द इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वामीजी अपने पिता के साथ मणिभूषण सेन के आवास पर रहे थे। वह घर वर्तमान में तीन हिस्सों में
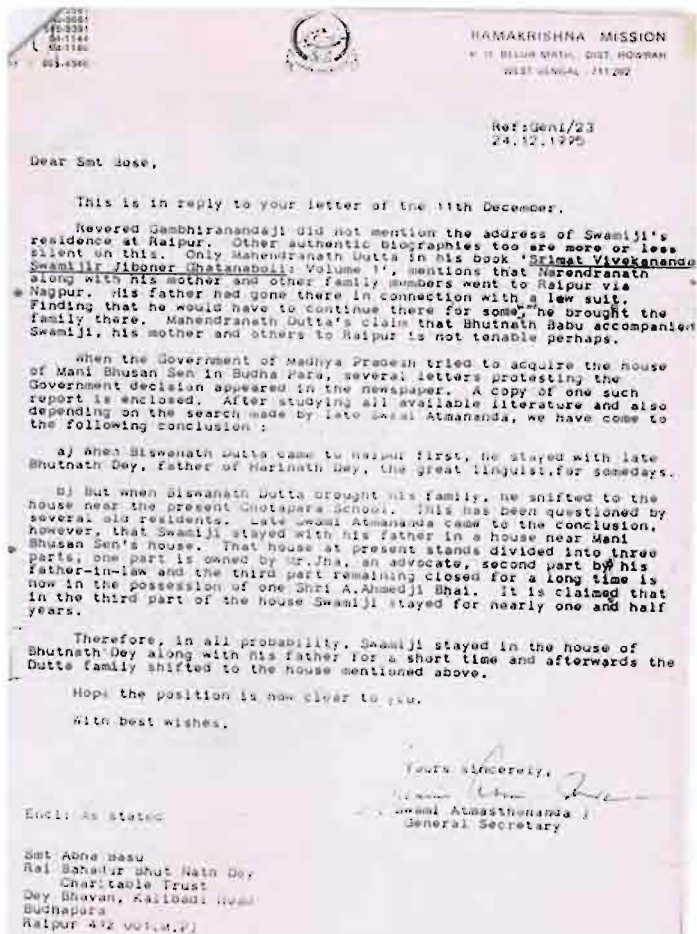
विभाजित है, एक हिस्से के मालिक वकील श्री झा जी हैं और दूसरे के उनके ससुर और तीसरा हिस्सा जो कि काफी समय से बन्द था, अब किसी ए. अहमद भाई के अधिकार में है। ऐसा मानना है कि मकान के तीसरे हिस्से में स्वामीजी लगभग डेढ़ साल तक रहे थे।

अत: ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामीजी अपने पिता के साथ भूतनाथ डे के मकान पर थोड़े समय के लिये रहे और तत्पश्चात् दत्त परिवार उपरोक्त निवास में स्थानान्तरित हो गया।

आशा है अब आप वस्तुस्थिति से अवगत हो गयी होंगी।

मंगल कामनाओं सहित,

स्वामी आत्मस्थानन्द (महासचिव)

सं. उपरोक्त

श्रीमती आभा बोस

राय बहादुर भूतनाथ डे, चेरीटेबल ट्रस्ट

डे भवन, कालीबारी रोड, बूढ़ापारा,

रायपुर-४९२००१ (म.प्र.)

(कालान्तर में उपरोक्त तीनों भूभागों का मालिकाना अधिकार स्थानान्तरित हो गया। मणिभूषण सेन के वंशज अमित सेन, जो अभी भी अपने पैतृक घर में रहते हैं, उनके अनुसार वर्तमान में ये तीनों स्थान श्रीगंगाराम शर्मा, श्रीपूनमचंद डागा और श्रीजैन के अधिकार में हैं। स्वामीजी (नरेन्द्रनाथ) इसी तीसरे स्थान में रहते थे।)

मन्मथनाथ सेन एवं उनका घर जहाँ स्वामीजी रुके थे

मन्मथनाथ सेन बंगाल के वर्धमान जिले के जमींदार परिवार से थे। उनकी जमींदारी कार्य में रुचि नहीं थी। इसलिए आजीविका की खोज में वे रायपुर आए। इस विषय में जानकारी हमें शिशिर कर की 'भारतेर पथे विवेकानन्द रायपुरे' नामक बंगाली पुस्तक से प्राप्त होती है। उन्होंने मन्मथनाथ सेन के पौत्र जितेन सेन का ८ फरवरी, १९९९ में साक्षात्कार लिया था। शिशिर कर लिखते हैं, ''लगभग डेढ़-सौ वर्ष पहले उनके पितामह (मन्मथनाथ सेन) डेप्युटी कलेक्टर के रूप में रायपुर आए थे (१८७९ के 'बंगाल डायरेक्टरी' मुफस्सिल पृ. क्र. २८५ में उनके डेप्युटी कलेक्टर के कार्यालय में क्लर्क के रूप में वर्णन है।) उनकी रायपुर में प्रचुर सम्पत्ति थी। उन्होंने बूढ़ापारा में चार-पाँच घर पास-पास बनाए थे। उनका परिवार किसी एक घर में रहता था और बाकी घर किराये पर दिए गए थे। नरेन्द्रनाथ दत्त और उनका परिवार इनमें से किसी एक किराये वाले घर में रहते थे।'' इस लेख के लेखक ने मन्मथनाथ के प्रपौत्र अमित सेन से भेंट की थी। वे वर्तमान में इसी स्थान में रहते हैं। अमित सेन, उनकी माता सविता सेन एवं उनकी पत्नी ने भी यही जानकारी दी कि स्वामीजी रायपुर में उसी स्थान में रुके थे। मणिमोहन (मणिभूषण) सेन मन्मथनाथ सेन के सम्बन्धी थे। वे जमीन-सम्पत्ति सम्बन्धी कार्य करते थे।

रायपुर निवासी डॉ. बनमाली चरण गुप्ता (बोनु-दा) द्वारा प्राप्त तथ्य

डॉ. बी. सी गुप्ता (बोनु-दा) रायपुर के बूढ़ापारा में रहते हैं। उनकी आयु ९० वर्ष है और वे रायपुर के प्रसिद्ध होम्योपैथ डाक्टर हैं। उन्होंने स्वामीजी के रायपुर आवास के विषय में काफी जानकारियाँ प्राप्त कीं। लेखक ने भी उनसे इस विषय में कई बार साक्षात्कार किया है और दस्तावेज के रूप में उनकी वीडियो रिकार्डिंग भी की गई है। डॉ. गुप्ता कहते हैं, ''जब हम रायपुर के बूढ़ापारा में (सम्भवत: १९४५ के पूर्व) में आए थे, तब मैं सेन जी के यहाँ खेलने जाया करता था। वहाँ मैं श्रीमती माणिक सेन (बासन्ती कुमारी सेन अथवा माणिक गिन्नी) नामक वृद्धा से मिला था। वे मन्मथनाथ सेन की सम्बन्धी थीं। उन वृद्धा का कहना था कि बचपन में वे नरेन्द्रनाथ के साथ उसी घर में बहुत खेलती थीं। वे दोनों समवयस्क थे।'' श्रीमती माणिक सेन
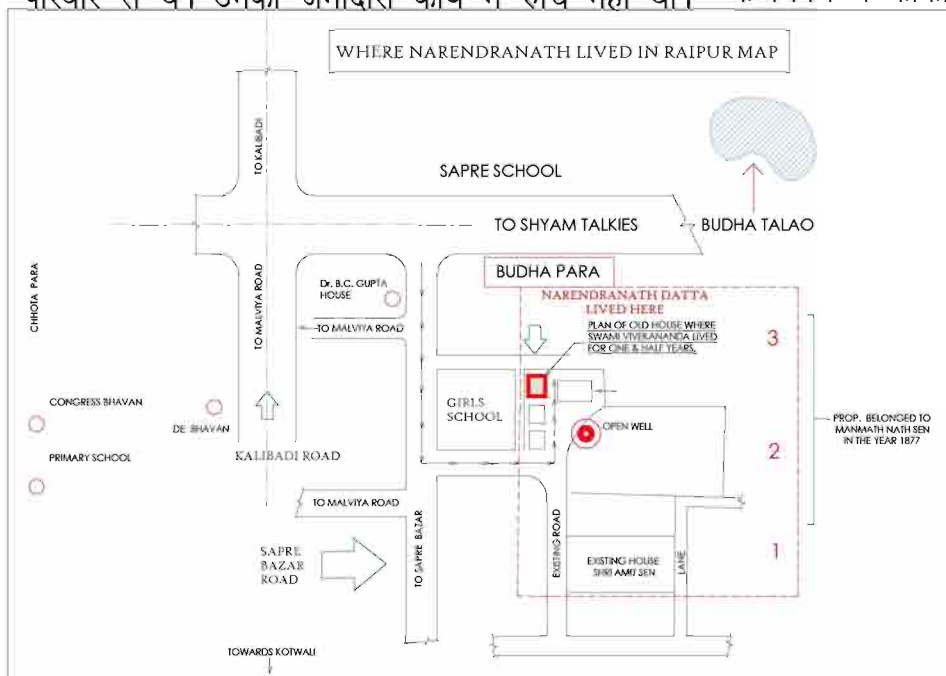
डॉ. बी. सी गुप्ता (बोनु-दा)

की आयु तब नौ वर्ष की थी और स्वामीजी की आयु चौदह वर्ष थी। ३१ अगस्त, १९८३ अथवा १९८४ के नवभारत समाचारपत्र में दिए गए साक्षात्कार में डॉ. गुप्ता कहते हैं, ''वृद्धा मणिक सेन ने मुझसे कहा था कि नरेन्द्रनाथ का घर उसी लाईन में था, जहाँ वकील झा जी का घर है।''

डॉ. गुप्ता के अनुसार स्वामीजी जहाँ रहते थे, वह स्थान तीन भागों में विभक्त हो गया। एक भाग श्री. झा. ॲडव्होकेट के अधिकार में, दूसरा भाग उनके ससुरजी के पास और तीसरा भाग लम्बे समय से बन्द था और अभी ए. अहमदजी भाई के अधिकार में था। डॉ. गुप्ता के अनुसार इसी तीसरे भवन में स्वामीजी एक-डेढ़ साल तक रहे थे। इसके समीप वर्तमान में एक कुँआ भी है । उस समय इस कुँए का व्यवहार उस अभिन्न सदन के सभी परिवारों द्वारा होता था । डॉ. गुप्ता ने श्रीमती माणिक सेन से सुना था कि स्वामीजी (नरेन्द्रनाथ) और उनका परिवार इसी कुँए का उपयोग करता था। डॉ. गुप्ता के उपरोक्त मत का रायपुर के रामकृष्ण मिशन के संस्थापक सचिव ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द महाराज भी समर्थन करते थे, जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं। (पूर्व कथनानुसार वर्तमान में ये तीनों स्थान श्रीगंगाराम शर्मा, श्रीपूनमचंद डागा और श्रीजैन के अधिकार में हैं। स्वामीजी (नरेन्द्रनाथ) इसी तीसरे स्थान में रहते थे और वह कुँआ अभी गंगाराम शर्मा जी के घर में है।)

शिशिर कर द्वारा लिखित पुस्तक 'भारतेर पथे विवेकानन्द रायपुरे'

पुस्तक के लेखक श्री शिशिर कर ने स्वामी विवेकानन्द की रायपुर तक की यात्रा और उनके रायपुर आवास सम्बन्धी अनेक तथ्य दिए हैं। शिशिर कर जी का जन्म बंगाब्द १३४२ में हुआ था। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए की और १९८४ में पी.एच.डी की पदवी प्राप्त की थी। उन्होंने ब्रिटिश राज के अन्तर्गत भारत के अनेक पुस्तकालयों में से दुर्लभ बंगाली साहित्य सम्बन्धी दस्तावेजों को एकत्र कर उन्हें पुस्तकाकार में प्रकाशित किया था। इसके अलावा अनेक पत्रिकाओं और समाचारपत्रों में उनके लेख प्रकाशित होते थे। उनका कहना है कि स्वामीजी और उनका परिजन रायपुर में डेढ़ वर्ष के आवास के दौरान दो घरों में रहे थे। प्रथम वे कालीबाड़ी के समीप डे भवन में और बाद में बूढ़ापारा के सेन जी के घर रहे थे। वे मन्मथनाथ सेन के घर में स्थित एक कुएँ का भी उल्लेख करते हैं, जिसका उपयोग स्वामी विवेकानन्द और उनके परिवार के लोग करते थे। वे डे भवन में स्थापित शिला-स्मारक का भी उल्लेख करते हैं, जिसमें स्पष्ट लिखा हुआ था कि स्वामीजी इसी स्थान पर रुके थे, जिसका चित्र यहाँ दिया जा रहा है।

निखिल बसु द्वारा लिखे पत्र में स्वामीजी की उक्त भवन में रहने की जानकारी

'भारतेर पथे विवेकानन्द रायपुरे' पुस्तक के लेखक

रायपुर के डे-भवन पर स्थापित स्मारक (इसे अभी हटा दिया गया है)

शिशिर कर ने अपने शोध कार्य के दरम्यान डे-भवन के तत्कालीन प्रभारी निखिल बसु से स्वामीजी के रायपुर आवास सम्बन्धित कुछ प्रश्न किए थे। निखिल बसु भूतनाथ डे के पुत्र अनादिनाथ डे की कन्या आभा बोस के पति थे। उन्होंने शिशिर कर को इस विषय में जो बंगाली में पत्र लिखा था, उसका अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है :

ता. ४-१०-९९

बूढ़ापाड़ा, कालीबाड़ी रोड, रायपुर, (म.प्र.) ४९२००१

माननीय शिशिरबाबू,

आपका पत्र आज मिला। इसका उत्तर दे रहा हूँ। विवेकानन्द के सम्बन्ध में जो आप जानना चाहते हैं, उसका विवरण (१) स्वामीजी, उनके पिताजी, माताजी, भाई और बहन तीन-चार महीने तक डे भवन में रहे थे, ऐसा ज्ञात

है। (२) नागपुर या जबलपुर से यहाँ के लिए उस समय रेल-मार्ग नहीं था। (३) रायपुर में स्वामीजी किसी स्कूल में भर्ती नहीं हुये थे। क्योंकि उनलोगों का निवास अस्थायी था। इसके अतिरिक्त उस समय अर्थात् १८७८ में यहाँ हाईस्कूल नहीं था। शिक्षा के लिये हरिनाथ डे को १८९० में कोलकाता भेजा गया। स्वामीजी लोग लगभग डेढ़ वर्ष तक रायपुर में थे। उस समय का कोई विशेष विवरण मुझे प्राप्त नहीं हुआ है। (५) बाद में स्वामीजी के पिताजी विश्वनाथ दत्त ने यह जानकर कि एटर्नी कार्य हेतु उन्हें और भी दो-चार महीने रायपुर में रहना होगा, भूतनाथ के भवन (डे भवन) को छोड़कर बहुत निकट ही बूढ़ापारा के मणि सेन के भवन में चले गये। मणिसेन के उस भवन को तोड़कर किसी अबंगाली ने उस स्थान को खरीद कर नया घर बना लिया है। मणिसेन के वंशधर अथवा ये अबंगाली व्यक्ति कोई भी यह नहीं कहते कि स्वामीजी यहाँ रहे थे, क्योंकि मध्यप्रदेश सरकार उक्त जमीन-मकान खरीद कर स्वामीजी का स्मृति-मन्दिर बना सकती है।

नमस्कार सहित, विनीत

निखिल बसु

विभिन्न समाचार-पत्रों में स्वामीजी के रायपुर आवास का उल्लेख

स्वामी विवेकानन्द के रायपुर आवास की जानकारी के विषय में रायपुर से प्रकाशित होने वाले अनेक समाचार-पत्रों से हमें लेख प्राप्त हुए हैं। विशेष बात यह है कि तत्कालीन मध्य प्रदेश के मुख्यमन्त्री माननीय अर्जुन सिंह जी ने भी इस विषय में रुचि दिखायी थी। वे चाहते थे कि स्वामीजी अपनी किशोरावस्था में रायपुर में जहाँ रुके थे, वहाँ स्मारक बनाया जाए। रायपुर में, विशेषकर बूढ़ापारा में यह विषय एक चर्चा का बन गया था। इसका उल्लेख प्रस्तुत लेख में दी गई समाचारपत्र की कतरन में प्राप्त होता है। कुछ लोग आशंकित और भयभीत भी थे कि सरकार उनकी भूमि लेकर वहाँ स्मारक बना देगी। इसलिए कुछ लोगों ने भ्रान्तियाँ फैलाने का भी प्रयत्न किया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने इस विषय में शोध किया था। इस विषय में अनेक समाचार-पत्रों में उनके द्वारा दिया गया विवरण प्रकाशित हुआ था। ३१ अगस्त, १९८३ में 'नवभारत' समाचारपत्र में दिए गए अपने साक्षात्कार में वे कहते हैं, ''मुझे लगता है कि डॉ. बी.सी. गुप्ता के तथ्य अन्य

9 Feb. 2003

12 देशबन्धु, रायपुर — कैपिटल

बिक चुका है स्वामीजी का 'असली घर'

रायपुर, ८ फरवरी (देशबन्धु)। स्वामी विवेकानंद के बचपन का 'असली घर' जहां उन्होंने बहुमूल्य दो वर्ष व्यतीत किए थे आज बिक चुका है। यह अलग बात है कि स्वामी जी 'डे भवन' भी जाया करते थे जहां आज भी उनके वहां रहने की शिला पट्ट लगी हुई है। अब दोनों स्थानों में से सरकार को तय करनी है कि स्मारक कहां बनेगा।

उल्लेखनीय है कि राज्य सरकार ने स्वामी जी की यादों को चिरस्थायी बनाने उनके निवासरत स्थान पर स्मारक बनाने की घोषणा की है और इस संबंध में नागरिकों से सुझाव आमंत्रित कर सर्वोत्तम सुझाव पर ५१ हजार रुपए का पुरस्कार देने की घोषणा भी की है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार स्वामी विवेकानंद सन् १८७७ में जब कक्षा ८ में पढ़ रहे थे तभी अपने माता-पिता व भाई-बहन के साथ कलकत्ता से सेंट्रल प्रोविन्स होते हुए नागपुर से ४ बैल गाड़ियों के साथ एक माह की यात्रा कर रायपुर पहुंचे थे। उनके साथ रायबहादुर डे भी थे। एक साथ यात्रा करके वे बूढ़ापारा स्थित माणिकबाई के घर पर ठहरे थे। माणिक बाई के रिश्तेदार आज भी इसी पुरानी मकान में रहते हैं। उनके पोते जीतेन्द्र सेन ने आज इस संवाददाता से एक संक्षिप्त बातचीत में बताया कि यह सच है कि विवेकानंद जी १२५ वर्ष पूर्व इसी मकान में ठहरे थे, लेकिन अब वह सब 'बिक' चुका है। उन्होंने हरिनाथ डे एकाडमी के बारे में कहा कि स्वामीजी बचपन में वहां जाया करते थे, लेकिन असली घर जहां वह पूरे परिवार के साथ रहते थे वह 'डे भवन' नहीं है।

विवाद — सरकार के लिए आसान नहीं स्मारक बनाना

स्वामी जी के निवास स्थान पर आज ऊंचे-ऊंचे बिल्डिंग बन चुके हैं। ऐसे में सरकार का कदम क्या होगा, यह ज्वलंत सवाल है। सूत्रों के अनुसार स्वामी आत्मानंद भी स्वामी विवेकानंद की यादों को चिरस्थायी बनाने बूढ़ापारा में स्मारक बनाने प्रयासरत थे, लेकिन विवादों के चलते वे ऐसा नहीं कर पाए। अब जबकि राज्य सरकार ने स्मारक बनाने की घोषणा की है तो एक बार फिर यह विवाद खड़ा हो गया है कि 'असली घर' कहां है। वैसे 'डे भवन' जहां स्वामी जी जाया करते थे उसे भी कुछ लोगों ने 'असली घर' बताने की कोशिश की है। वर्तमान में इस 'डे भवन' में रायबहादुर भूतनाथ डे चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा संचालित हरिनाथ डे एकाडमी चल रहा है, जहां नर्सरी से कक्षा १० तक की कक्षाएं चलती हैं। यह एकाडमी नगर पालिका निगम द्वारा संचालित कन्या प्राथमिक शाला के सामने सड़क किनारे स्थित है। असली-नकली के इस खेल में स्वामी जी का स्मारक बन पाएगा या नहीं यह तो समय बताएगा, लेकिन इतना तय है कि सरकार को भी इस मामले को सुलझाने में मशक्कत करनी पड़ेगी। इस संबंध में रायबहादुर भूतनाथ डे चैरिटेबल ट्रस्ट से भी संपर्क करने का प्रयास किया गया लेकिन कोई भी ट्रस्टी बातचीत के लिए उपलब्ध नहीं हो सके। १२५ वर्ष बीत जाने के बाद सरकार ने स्वामी जी की सुध ली है। उनकी रायपुर यात्रा के सवा सौ वर्ष पूरे होने पर इस वर्ष साल भर कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे। संस्कृति विभाग के संचालक प्रदीप पंत ने 'ऐतिहासिक भवन (असली या नकली) का सबसे अच्छे उपयोग के बारे में सुझाव आमंत्रित किए हैं। सर्वोत्तम सुझाव पर ५१ हजार रुपए का पुरस्कार भी दिया जाएगा। नागरिक अपने सुझाव संचालक, संस्कृति और पुरातत्व संचालनालय, महंत घासीदास संग्रहालय के पते पर आगामी १५ मार्च २००३ तक भेज सकते हैं। सरकार ने रायपुर में वर्तमान आकाशवाणी केन्द्र से काली मंदिर, ओ.सी.एम. चौक, महिला थाना के पास मधुसूदन चौक होते हुए सप्रे स्कूल और बुढ़ेश्वर मंदिर तक जाने वाले मार्ग का नामकरण स्वामी विवेकानंद के नाम पर करने का प्रस्ताव भी पारित किया है। इस प्रस्ताव पर नगर निगम से त्वरित कार्रवाई का अनुरोध किया गया है।

नामदेव समाज विकास परिषद

९ फरवरी, २००३, 'देशबन्धु', रायपुर

स्वामी विवेकानंद रायपुर में दो वर्ष रहे थे

२८ फरवरी, १९७९, 'युगधर्म', रायपुर

लोगों की अपेक्षा अधिक वजनदार हैं।'' इसके अनुसार हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वामी विवेकानन्द रायपुर में डेढ़ वर्ष के दरम्यान सर्वप्रथम अल्प दिनों के लिए डे-भवन में रुके थे और उसके बाद वे मन्मथनाथ सेन के यहाँ किराए के मकान में रहने के लिए गए। स्वामीजी रायपुर में जिस घर में रुके थे, तथ्यों के आधार पर उसे नक्शे के द्वारा चिह्नित किया है। स्वामीजी की रायपुर से कलकत्ता तक की वापसी यात्रा का वर्णन अन्य किसी अंक में किया जाएगा। ○○○

पंचक्लेश

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

चित्त के स्वरूप को समझने के लिये क्लेशों को समझना भी आवश्यक है । अगर चित्त सरोवर के ऊपर चित्त वृत्तियाँ रूपी लहरें उठती हैं और सरोवर की गहराई या भूमि पाँच प्रकार की हो सकती है, तो यह भी समझ लेना चाहिए कि चित्त सरोवर की तलहटी पांच क्लेशों द्वारा बनी होती है। उसके नीचे अर्थात् गहराई में चैतन्य आत्मा या पुरुष या द्रष्टा होता है।

ये पाँच क्लेश हैं, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। अविद्या मानो वह क्षेत्र, खेत है, जिसमें अन्य चार उगते हैं। याने अविद्या से अस्मिता या अहंकार पैदा होता है। अहंकार से राग और द्वेष और राग और द्वेष का अन्तिम परिणाम है अभिनिवेश, अर्थात् जीवित रहने की इच्छा – मृत्यु से भय।

अविद्या, अज्ञान, माया इत्यादि को योग और वेदान्त दोनों में संसार चक्र आदि कारण के रूप में स्वीकार किया गया है। लेकिन योगशास्त्र में उसकी परिभाषा और लक्षण का सर्वश्रेष्ठ वर्णन मिलता है।

अनित्याशुचिदु:खानात्मसु नित्यशुचि सुखात्मख्याति-रविद्या। यो.सू.-२/५॥

अर्थात् अनित्य, अशुचि, दुख तथा अनात्म विषयों में नित्य, शुचि, सुख और आत्मा का ज्ञान या मान्यता या भ्रम होना अविद्या कहलाती है। इसे गहराई से समझने का प्रयत्न करें।

१. अनित्य को नित्य समझना - यह पृथ्वी अनित्या है, लेकिन उसे हम नित्य समझते हैं। हिमालय पर्वत लाखों वर्षों से खड़ा होने के कारण नित्य प्रतीत होता है, पर भूगोल-वैज्ञानिक हमें बताते हैं कि लाखों वर्षों पूर्व जहाँ आज हिमालय है, वहाँ सागर था। दूर क्यों जावें, हम अपने शरीर को ही लें। क्या हम कभी सोचते हैं कि वह अनित्य है और एक दिन नष्ट हो जाएगा? यक्ष के द्वारा पूछे जाने पर युधिष्ठिर ने इसे ही परमाश्चर्य बताया था कि नित्य प्राणियों का नाश होते हुए भी सभी यह समझते हैं कि वे नहीं मरेंगे –

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषा: स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमित: परम्।।

२. अशुचि को शुचि समझना – हम कभी यह सोचते ही नहीं कि हमारी यह भौतिक देह अत्यन्त अपवित्र है। इस सूत्र पर व्याख्या करते हुए व्यासदेव इस देह के अपवित्र होने के छ: कारण बताते हैं – १. स्थान २. बीज ३. उपस्तम्भ ४. स्यन्दन ५. निधन और ६. आद्येयशौचत्व।

स्थान – जरायु या माता का गर्भ। वह मूत्राशय और मलाशय के बीच रहता है। ऐसे अपवित्र स्थान में हमारा शरीर नौ महीनों तक रहता है।

बीज – इस देह का निर्माण माता-पिता के अपवित्र अंशों के मिलन से होता है।

उपस्तम्भ – अर्थात् भुक्त पदार्थों से मिलकर बनना। हम जो खाते हैं, वह गले से नीचे उतरते ही अपवित्र हो जाता है। अगर चमड़ी को उघाड़ कर देह को देखें, तो वह अत्यन्त बीभत्स दिखेगी। जैनों के २४ तीर्थंकरों में 'मल्ली' नामक एक सुन्दर राजकुमारी थी। अपने स्वयंवर के पूर्व उन्होंने अपनी एक सुन्दर सोने की मूर्ति बनाई, जो भीतर से पोली थी। वह प्रतिदिन जो खाती थी, उसी तरह का भोजन उस मूर्ति के भीतर एक ढक्कन से भरकर पुन: उसे बन्द कर देती। उनके स्वयंवर के दिन जब अनेक राजा आये, तो राज दरबार में मल्ली की सुन्दर मूर्ति को देखकर अभिभूत हो, उसकी प्रशंसा करने लगे। उस समय मल्ली वहाँ आई और उसने मूर्ति का ढक्कन खोल दिया। संचित खाद्य पदार्थ के सड़ने से उसमें से तीव्र दुर्गन्ध निकली। तब मल्ली ने राजाओं से कहा कि यह मानव देह भी इसी प्रकार की घृणित वस्तुओं से भरी है।

स्यन्दन या निस्यन्द – इस देह के सात द्वारों से तथा त्वचा-चमड़ी से पसीना आदि गन्दी वस्तुएँ सदा निकलती रहती हैं।

निधन – मृत्यु होने पर सभी शरीर अशुचित समझे जाते हैं। मरने के बाद जितनी जल्दी हो, उसे जला दिया जाता है और ११-१३ दिन तक अशौच माना जाता है।

आद्येय-शौचत्व – देह को सदा शुद्ध रखना पड़ता है। यदि एक दिन भी हम स्नान न करें, तो वह गन्दी हो जाती है।

इन छह कारणों से देह अशुचि है, फिर भी ऐसी देह को

रमणीय, सुन्दर इत्यादि समझा जाता है तथा नाना श्रृंगारिक उपमाएँ दी जाती है।

३. दुखदायक को सुखदायक समझना – धन, पुत्र, संतान, नाम, यश आदि जो अनेक कारणों से मूलत: दुखदायक हैं, उन्हें सुखदायक समझना अविद्या का एक लक्षण है। मेडिकल गवेषणा से यह पाया गया है कि एक सीमा से अधिक आमदनी की वृद्धि के अनुपात में रक्तचाप भी बढ़ता जाता है। सभी खरबपतियों में एक बात समान रूप से पाई जाती है कि उनमें से कोई भी सुखी नहीं होता। पुत्र को सुख का मूल समझा जाता है। लेकिन शास्त्रकार विवेक कर उसमें निहित दुख का निर्देश करते हैं, पुत्र न हो, तो दुख होता है। जन्म के समय माता को प्रसव वेदना होती है। पुत्र को बड़ा करने में, पालन-पोषण, शिक्षा रोगादि में दुख उठाना पड़ता है। यदि मूर्ख निकला, तो दुख, पढ़-लिख कर आज्ञाकारी न हो, तो दुख। अल्पायु हो, तो दुख। दीर्घायु हो, पर माता-पिता से दूर रहे, तो दुख। इसीलिए स्वयं पतंजलि कहते हैं कि परिणाम, ताप, संस्कार और गुणवृत्ति-विरोध के कारण विवेकी व्यक्ति के लिये सभी दुखमय है – **परिणाम-तापसंस्कार-दुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।।** (योग.सू.२,१५)

४. अनात्मा को आत्मा समझना – मूढ़ व्यक्ति चेतन, अचेतन, बाह्य उपकरण – यथा पुत्र, गृह, धन आदि के साथ तादात्म्य स्थापित कर उन्हें मानो आत्मा समझ बैठता है। धन का नाश होने पर कहता है – 'हाय मैं मरा'। पुत्र को क्षति होने पर स्वयं की क्षति समझता है। इसी तरह शरीर, मन, आदि अनात्म पदार्थों में आत्मा का भ्रम हो जाता है, जबकि नित्य शुद्ध, बुद्ध आत्मा इन सभी से भिन्न होती है।

अस्मिता – अस्मिता या अहंकार दूसरा क्लेश है। इसकी परिभाषा है – **दृक्दर्शनशक्तयोरेकात्मतेवाऽस्मिता।** अर्थात् दृक्शक्ति याने चैतन्य, द्रष्टा, आत्मा और दर्शन शक्ति याने बुद्धि, इन दोनों की एकात्मता अस्मिता है। हमारी शुद्ध चैतन्य आत्मा बुद्धि से पृथक है, लेकिन हम यह कभी जान नहीं पाते। बुद्धि के क्रिया-कलाप के साथ हमारा ऐसा तादात्म्य हो जाता है कि उसे ही हम 'मैं' समझते हैं। यह इसके आगे भी फैलता है और हमारे मन, इन्द्रियों और देह तक पहुँच जाता है। हम इन सबको 'मैं' कहने लगते हैं। यही अहंकार है।

राग और द्वेष – सुख और सुख के साधन में जो तृष्णा या लोभ या उसे पाने की इच्छा है, उसे राग कहते हैं। दुख और दुख के कारणों से बचने का, दूर करने का या नष्ट करने का जो भाव है, वही द्वेष कहलाता है। इन दोनों से सभी परिचित हैं। ये हम सभी को नाना प्रकार से परिचालित करते हैं। जिसके राग-द्वेष जितने प्रबल होते हैं, उसके जीवन में उतना ही अधिक कष्ट होता है।

अभिनिवेश – सभी प्राणियों में स्वाभाविक रूप से यह अभिलाषा रहती है कि 'मेरा अभाव न हो, मैं जीवित रहूँ।' पहले जिसने मृत्यु के कष्ट का अनुभव नहीं किया है, वह इस प्रकार आत्मा के बने रहने की इच्छा नहीं कर सकता। यह अभिनिवेश नामक क्लेश स्वरसवाही है, अर्थात् सहज या स्वभावत: पूर्व संचित संस्कार के कारण होता है। यह मूर्ख और विद्वान दोनों प्रकार के लोगों में देखा जाता है। विद्वान, याने ऐसा व्यक्ति, जो जानता है कि मृत्यु अनिवार्य है, वह भी मृत्यु से डरता है।

ये पाँच क्लेश चित्त की तलहटी का मानो निर्माण करते हैं। पतंजलि के अनुसार इसकी भी चार अवस्थायें या स्तर होते हैं – प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार। प्रसुप्त अवस्था में ये अविद्यादि क्लेश मानो सोये रहते हैं। एक पाँच वर्ष के बालक में अहंकार, राग, द्वेष आदि प्रकट रूप में दिखाई नहीं देते। श्रीरामकृष्ण के अनुसार बालक सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों के वश में नहीं होता, उसमें ये क्लेश सोये-प्रसुप्त रहते हैं, जो उसके बड़े होने पर प्रकट हो जाते हैं। संस्कार अवस्था ही प्रसुप्त अवस्था है।

तनु अर्थात् क्रियायोग वैराग्य आदि की साधना से क्षीण हुए क्लेश। तनु क्लेश दुर्बल होते हैं, पर विशेष अनुकूल परिस्थितियों में वे व्यक्त हो सकते हैं। उदार अर्थात् व्यापारयुक्त याने क्लेश की अभिव्यक्त स्थिति। माँ जब सन्तान को लेकर प्यार कर रही होती है, तब राग उदार हो जाता है, इत्यादि। विच्छिन्न का अर्थ है, अन्य क्लेशों के उदार होने पर उससे भिन्न क्लेश का अप्रकट होना या कुछ समय के लिये दब जाना। जैसे एक क्रूर व्यक्ति भी जब अपने बच्चे को गोद में लेकर उसका चुम्बन करता है, तब राग तो उदार होता है, पर उसका द्वेष, अहंकार आदि अन्य क्लेश उस समय के लिए विच्छिन्न हो जाते हैं।

क्लेशों की एक पांचवीं स्थिति का उल्लेख व्यासदेव ने अपने भाष्य में किया है। वह है 'दग्धबीज'। अग्नि से दग्ध या भुने जाने पर बीज पुन: अंकुरित नहीं होते, उसी

शेष भाग पृष्ठ ५१६ पर

छह कब्जे क्यों ले आये?

लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया, भोपाल

मध्यप्रदेश शासन द्वारा वर्ष १९६०-७० के दशक में ग्राम पंचायत एवं जनपद पंचायत के सदस्यों को पंचायती राज के सम्बन्ध में प्रशिक्षित करने हेतु प्रदेश के सभी संभागों में पंचायती राज प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये थे, जो स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा संचालित होते थे। रायपुर संभाग में श्रीरामकृष्ण सेवा समिति, रायपुर (विवेकानन्द आश्रम) एक पंचायती राज प्रशिक्षण केन्द्र संचालित करती थी। प्रशिक्षण हेतु शासन से श्रीरामकृष्ण सेवा समिति को आवश्यक अनुदान राशि मिलती थी। ग्राम पंचायत के पंचों को उनके गाँव में तथा सरपंचों एवं जनपद पंचायत के सदस्यों को रायपुर विवेकानन्द आश्रम में ही प्रशिक्षण दिया जाता था। उनके निवास हेतु कुछ कमरे थे और प्रशिक्षण हेतु छोटा हॉल भी था। इनके संरक्षण हेतु भी शासन से अनुदान-राशि मिलती थी। इनमें प्रशिक्षण केन्द्र के एक कमरे की खिड़की का कब्जा टूट गया था।

श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज संन्यास के पूर्व इस पंचायती राज प्रशिक्षण केन्द्र के प्राचार्य थे और मैं प्रशिक्षक था। तब आश्रम का बाहरी कार्य मैं ही करता था। श्रद्धेय स्वामी आत्मानन्द जी महाराज प्राय: मुझे कार्य से बाहर भेजते थे। एक दिन स्वामी आत्मानन्द जी ने प्रशिक्षण केन्द्र के कमरे की खिड़की को सुधरवाने के लिए तीन कब्जे लाने को कहा। उन दिनों आश्रम में कोई गाड़ी नहीं रहती थी। हम लोग आश्रम के कार्यों के लिए साइकिल में आते-जाते थे। मैं साइकिल से दुकान गया। तीन कब्जे मांगने पर उसने छह कब्जों का एक पैकेट ले जाने को कहा। मैं एक पैकेट कब्जा लेकर स्वामी आत्मानन्द जी के कमरे में गया। स्वामीजी ने कब्जा और केशमेमो देखकर पूछा, ''मैंने तो तीन कब्जे लाने को कहा था, तुम छह कब्जे क्यों ले आए?'' मैनें उत्तर दिया, ''भैया! बचे कब्जे आश्रम में कहीं काम आ जायेंगे । स्वामीजी ने मेरी ओर देखकर कहा, ''बाबू ! यह मध्यप्रदेश शासन का पैसा है। सरकार के पैसे का दुरुपयोग करना गलत है। तुम तत्काल वापस जाओ, तीन कब्जे वापस कर दूसरा केशमेमो लाओ।'' मैं स्वामीजी की बात सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। स्वामीजी तथा रामकृष्ण संघ की सत्य निष्ठा, ईमानदारी तथा कार्यप्रणाली को देख कर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। मैंने ऐसे महान पुरुष और संस्था से सम्बद्ध होने का गर्व अनुभव किया। गर्मी के दिन थे। मैंने गर्मी की परवाह किए बिना, तत्काल गोल बाजार दुकान से तीन कब्जे वापस कर दूसरा केशमेमो लाया।

इस घटना का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। शासकीय संपत्ति के प्रति लोगों का दृष्टिकोण ठीक नहीं होता। उसका दुरुपयोग करने, तोड़-फोड़ करने, जलाने में देश के लोगों को कोई कष्ट नही होता, उसे वे मुफ्त की चीज समझते हैं, और इस कुकृत्य का आनन्द भी लेते हैं।

इसी से सम्बन्धित एक दूसरी घटना है। यह घटना वर्ष १९८५-८६ की होगी। स्वामी आत्मानन्द जी के साथ स्वामी श्रीकरानन्द जी, श्री तुंगनदाऊ और मैं नारायणपुर आश्रम से भानुप्रतापपुर के रास्ते से रायपुर लौट रहे थे। लगभग सन्ध्या पाँच बजे का समय था। जीप में कुछ खराबी थी। हमलोगों ने भानुप्रतापपुर में पी. डब्ल्यु. डी. के विश्राम गृह में रुककर गाड़ी सुधरवाने के लिए भेज दी। तब मैं विधायक था। मैंने विश्रामगृह के चौकीदार को अपना परिचय दिया और चाय आदि की व्यवस्था करने के लिए पैसे दिए। जून का महीना था, उमस थी, हम लोगों ने चौकीदार को कुर्सी-टेबल आदि बाहर के एक छोटे बगीचे में लगाने को कहा और बाहर बैठ कर जलपान किया। इसी बीच अन्धेरा होने लगा, तेज हवा चलने लगी और बिजली बन्द हो गई। मैंने चौकीदार को मोमबत्ती लाने के लिए भेजा। वर्षा होने के आसार थे, तभी जीप सुधर कर आ गई। हम लोग जल्दी निकलने के चक्कर में जीप में बैठने के लिए जाने लगे, तभी हमलोगों ने देखा कि स्वामी आत्मानन्द जी वहीं रुककर कुर्सी आदि को ऊपर बरामदे में छत के नीचे रख रहे हैं। हमलोग तत्काल वापस दौड़े। मैंने कहा, ''भैया ! चौकीदार रख देगा।'' स्वामीजी ने कहा, ''बाबू, वर्षा होने के आसार हैं, विश्रामगृह का फर्नीचर वर्षा से खराब हो जायेगा।'' हम सबने मिलकर कुर्सी-टेबल को सुरक्षित स्थान पर रखा, उसके बाद रायपुर के लिए प्रस्थान किया।

मैंने सोचा, मैं प्रदेश का विधायक हूँ, हमारी सरकार है, इस सरकारी सम्पत्ति की मुझे कोई चिंता नही है, किन्तु एक सर्वत्यागी संन्यासी को है। हम प्रजातन्त्र में नागरिक के कर्तव्य को भूलकर केवल अधिकारों की बात करते हैं। स्वामी आत्मानन्द जी कर्मयोगी थे, एक आदर्श नागरिक थे । उन्होंने रामकृष्ण संघ के आदर्शानुसार देश के गरीब, आदिवासी किसान, मजदूरों की सेवा प्रारम्भ की थी। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (७३)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

श्रीरामचन्द्र के समय ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि दुष्ट डकैत लोग जप-यज्ञ नहीं करने देते थे। तब उन सबकी सुरक्षा के लिए क्षत्रियों का एक दल सामने आया । उन लोगों का ध्यान केवल शरीर की ओर ही था। तब ऐसी हठयोगी की क्रिया विकसित हुई कि शरीर में बाण लगता ही नहीं था। तदुपरान्त वे लोग प्रबल हो गए। फिर परशुराम ने आकर क्षत्रियों का दमन किया। श्रीरामचन्द्र के समय ब्राह्मण और क्षत्रिय समान होकर एक साथ देश पर शासन करने लगे। व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाने लगा। अन्त में बुद्धदेव आकर बलि-प्रथा के विरुद्ध दृढ़ता से खड़े हो गए।

उस समय बलि के नाम पर परपीड़न होता था। सभी लोग बिलकुल मदमत्त होकर रहते थे। अहा ! बुद्ध का कैसा भाव है ! वे बलि दिए जानेवाले बकरी के बच्चे को छुड़ाकर स्वयं अपने मस्तक की बलि देने को कहते हैं। वे कहते हैं – "मैं राजा का पुत्र हूँ, इससे अधिक पुण्य होगा।" ऐसा क्यों नहीं होगा? क्योंकि वे 'सर्वभूतस्थमात्मानम्' – सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को ही देख रहे थे।

२९-४-१९६१

महाराज – बहुत अच्छी तरह से सुनकर रखो, कुछ जरूरी बातें कहूँगा। धार्मिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन में आकाश-पाताल का अन्तर है। हम लोग केवल यही गलती करते हैं कि दोनों को एक समझ लेते हैं। हम जानते हैं कि अभ्युदयाकांक्षी अर्थात् भौतिक समृद्धि के इच्छुक व्यक्ति का जीवन धार्मिक है, वह धर्मपरायण होगा। दूसरा नि:श्रेयस जीवन है अर्थात् मुमुक्षु का जीवन। इसे धार्मिक जीवन कहना बड़ी भूल है, बल्कि इसे आध्यात्मिक जीवन या आत्मतत्त्वपरक जीवन कहा जा सकता है।

गीता में हम कहीं भी ज्ञान, भक्ति अथवा कर्म की ऐसी बात नहीं देखते हैं, सर्वत्र मुक्ति की बात ही दिखाई पड़ती है। केवल यही बात है कि कैसे मुक्ति हो। कहीं भी गेरुआधारी संन्यासी बनने को नहीं कहा गया है। मन से वासना-त्याग की बात ही कही गई है, इससे अपने आप ज्ञान उत्पन्न होगा। बलपूर्वक कर्तव्य कर्मों का परित्याग करने से ध्यान में बैठने पर वासनाएँ किलबिलाने लगती हैं और साधक को अध:पतित कर देती हैं। सम्भवत: तमोगुण या रजोगुण की प्रबल प्रेरणा से व्यक्ति हित-अहित समझने में अक्षम हो जाता है। अनन्त काल से कर्म करते आ रहे हैं, इसीलिए अकस्मात् कर्म-त्याग नहीं हो सकता, जितना चलकर आ गए हैं, उतना फिर वापस जाना होगा। इसीलिए कर्मक्षय करने के लिए कर्म करना है। जिस जगत के लिए हमारी इतनी पिपासा है, वह जगत कहाँ है? वह तो हमारे देह और मन में है। देह और मन को हटाकर देखो, तो देखें कि संसार कहाँ टिकता है?

सब कुछ का क्रमिक विकास आवश्यक है। पहले देश में एक शृंखला थी – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र की श्रेणी थी, उनकी वृत्ति थी। एक ही विषय में वंश-परम्परा समृद्ध होते-होते परिपक्व हो जाती थी। मुसलमान शासकों के काल में यज्ञ करने-कराने की ब्राह्मणों की जो वृत्ति थी, वह चली गई। उसके बाद उनकी जीविका से जीवन-निर्वाह नहीं होता था। जो लोग राजा को संतुष्ट करके रहे, वे समृद्ध होने के कारण आलसी और तमोगुणी होकर ठगने में निपुण हो गये और स्वयं ही अपने अध:पतन को निमन्त्रण दे दिये।

मुसलमानों के शासन-काल में क्षत्रियों की भी जरूरत नहीं थी, इसीलिए ब्राह्मणों और क्षत्रियों दोनों की जीविका चली गई। तदुपरान्त अंग्रेज आए। मुसलमान शासन में भी चाँदसागर, श्रीमन्त आदि की वाणिज्य की बात सुनाई पड़ती है, किन्तु अंग्रेज लोग दस्यु-व्यापारी थे। पुर्तगाल, इंग्लैण्ड आदि दस्यु न हों, तो करें क्या? देश छोटा है, जनसंख्या अधिक है, कैसे खाने का प्रबन्ध करें ! बाध्य होकर उनमें परधन को लूटने की प्रवृत्ति आ गई। अंग्रेजों के शासन-काल

में बुनकरों का अंगूठा काट लिया जाता था। नहाने, खाने, सोने, दीपक जलाने का सामान, यहाँ तक कि दियासलाई भी विदेशी जहाज से मँगाते थे। वैश्य भी चले गए। लोगों को लाकर चाय-बागानों में, नील की खेती में भर्ती करने हेतु पन्द्रह वर्षों का अनुबन्ध करवाकर कुली बनाकर छोड़ दिया गया। नैतिकता, स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि को नष्ट कर दिया गया। पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा में शिक्षा का प्रसार नहीं किया गया। कुली बनाने के लिये स्कूल नहीं खोलने देते थे। उन सब स्थानों में तो प्राय: ब्राह्मण ही नहीं थे। खाने को ही नहीं पाते, तो सुसंस्कृत कैसे बनते। अन्त में रामानन्द चटर्जी ने जाकर बलपूर्वक उत्तर प्रदेश में हाई स्कूल खोला। शूद्रजाति को भी कुली बना दिया। इस बार सारे देश को बिल्कुल हीन बना दिया।

ब्राह्मण यज्ञ के नाम पर सांढ़, बकरा, भेड़ जो पाते, उसकी केवल बलि देते और मद्यपान करते। देश बर्बाद होता जा रहा था। तब बुद्ध ने आकर, सबको हटाया और सबके लिये संन्यास का द्वार खोलकर यज्ञ और बलि से देश की रक्षा की। यदि वे विशुद्ध संन्यास की बात न कहकर इसी तरह की धर्म-यज्ञ की बातें कहते, तो ब्राह्मण लोग तत्क्षण नाराज हो जाते। संन्यास लेने का अर्थ यह है कि अनन्त प्रकार की वासनाएँ तो समाप्त नहीं की जा सकती हैं, इसलिए वासनाओं को कम करने का प्रयास करना है, जिससे कोई प्रतिक्रिया न हो। इसके लिये अनुत्तेजित होकर बाहरी चीजों के प्रति उदासीन हो जाना है। प्रकृति तो पीछे खींच ही रही है। किन्तु ऐसा दृढ़निश्चय रहना चाहिए कि पैर काट लेने पर भी नहीं हटूँगा, अडिग रहूँगा। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ४९५ का शेष भाग

बालक आ पहुँचा । भगत उससे बोला, ''महाराज सूखी रोटी खा रहे हैं, उनको थोड़ा दूध दे न !'' चरवाहे ने कहा, ''ठीक है, दूध यदि निकाल सको, तो ले लो ।'' भगत ने अपनी जादू की पोटली से तत्काल एक कटोरा बाहर निकाला और करीब आधा सेर दूध दुह लिया । उस दूध और गुड़ के साथ वह टिक्कड़ इतना स्वादिष्ट लगा था कि उसे जीवन में कभी भूल नहीं सकूँगा । भोजन के बाद बरतनों को माँज-पोंछकर फिर झोली में रख दिया गया । मैं भगत के साथ पुन: यात्रा पर निकल पड़ा । **(क्रमश:)**

काली-स्तुति:

सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

रौद्रं मुखं दुष्टजनाय यस्या:
सौम्या सदा सा प्रणताय माता ।
कालस्य धात्रीं जगतो विधात्रीं
तामेव कालीं शरणं व्रजाम: ।।

– जिनका मुखमंडल दुष्टों के लिये रौद्र और शरणागत के लिये सदा सौम्य है । काल को धारण करनेवाली और जगतविधायिनी हम उसी काली माता की शरण लेते हैं ।

देवा न युद्धे विजयं लभन्ते
तत्रासुरान् हन्ति भयंकरी या ।
सम्पूज्यते देवजनैरजस्रं
तामेव कालीं शरणं व्रजाम: ।।

– देवगण युद्ध में जहाँ विजय नहीं कर पाते, वहाँ भयंकरी रूप धारण कर जो असुरों का वध करती हैं और देवों द्वारा निरन्तर पूजित होती रहती हैं, हम उसी काली माता की शरण लेते हैं ।

या सर्वसिद्धिं च ददाति सौख्यं
संहृत्य पापानि मनसि प्रमोदम् ।
यस्या: कृपाया: भवरोगमुक्ति:
तामेव कालीं शरणं व्रजाम: ।।

– जो समस्त सिद्धि (सफलता) और सुख देती हैं, जिनकी कृपा से संसार रूपी रोग से मुक्ति प्राप्त होती है, हम उसी काली माता की शरण लेते हैं ।

गृह्णन्ति कालीचरणाश्रयं ये
माया न तान् वंचयते कदाचित् ।
कालोऽपि नृत्यन् पुरतो न पृष्ठे
तामेव कालीं शरणं व्रजाम: ।।

– जो काली माता के चरणों का आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें माया कभी नहीं छलती और नाचता हुआ काल भी उनके आगे या पीछे नहीं आता । अत: हम उसी काली माता की शरण लेते हैं ।

संसारपाशस्य अमोघमस्त्रम्
यस्या: प्रसादात् पुरुषा लभन्ते ।
प्रारब्धजालं च छिनत्ति सर्वं
तामेव कालीं शरणं व्रजाम: ।।

– जिसके अनुग्रह से मनुष्य संसार रूपी बन्धन का अचूक अस्त्र प्राप्त कर लेता है और प्रारब्ध के सारे जाल को काट देता है, हम उसी काली माता की शरण लेते हैं ।

ज्योतिबा फुले

ज्योतिबा फुले का जन्म १८२७ में हुआ था। उनकी पिछली पीढ़ियाँ फूल बेचने का काम करती थीं, इसलिए उनका नाम फुले पड़ा। उनके पिता जी का नाम गोविन्द राव था और माता का नाम चिमणाबाई था। ज्योतिबा जब नौ महीने के थे, तभी उनकी माँ चल बसी थीं। उनका लालन-पालन उनकी मौसेरी बहन सगुणाबाई ने किया।

उनके पिता का सपना था कि उनका बेटा पढ़-लिखकर बहुत आगे बढ़े। उन्होंने अपने पुत्र को अंग्रेजी स्कूल में प्रवेश कराया। किन्तु ज्योतिबा के जाति वालों ने उनका घोर विरोध किया और कहा कि अंग्रेजी स्कूल में जाने से बच्चा बिगड़ जाएगा। इस स्कूल के बारे में ऐसी भी खबरें थीं कि वहाँ बच्चों को पढ़ाई के बहाने ईसाई बना दिया जाता है। बिरादरी के लोगों ने उनके पिता को धमकी दी कि यदि वे अपने पुत्र को अंग्रेजी स्कूल से नहीं निकालेंगे तो वे उन्हें अपनी जाति से निकाल देंगे। उनके पिताजी को भी लगा कि आखिर पढ़-लिखकर तो उसको खेती ही करनी है। इस प्रकार नौ साल के ज्योतिबा को स्कूल से निकाल दिया गया और उसे खेती का काम करने के लिए कहा। बिचारा ज्योतिबा और करता भी क्या? वह पूरा दिन खेती का काम करता और रात को दिये के प्रकाश में पढ़ता। पढ़ने में उसकी बहुत रुचि थी।

एकबार उनकी मौसेरी बहन सगुणाबाई ने ज्योतिबा के पिता गोविन्दराव के परिचित किसी से कहा कि वे उन्हें कहें कि ज्योतिबा को फिर से अंग्रेजी स्कूल में दाखिला दें। इस प्रकार बहुत प्रयासों के बाद ज्योतिबा फिर से अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने लगे। पढ़ाई के साथ वे नियमित अच्छा व्यायाम भी करते थे।

तब हमारा देश अंग्रेजों के पराधीन था। ज्योतिबा ने भी अपना नाम क्रान्तिकारियों के एक दल में लिखवा दिया था। उन्होंने अपने पिता से यह बात कही। किन्तु उन्होंने कहा कि पहले पढ़ाई में ध्यान दो। उस समय समाज में जातिभेद बहुत था। ज्योतिबा के परिवार को उस समय निम्न जाति का माना जाता था। उच्च जाति के लोग उन्हें समाज में अपने समकक्ष नहीं मानते थे और आदर नहीं करते थे। इस सम्बन्ध में उन्हें एक कटु अनभव झेलना पड़ा।

एकबार उनके मित्र ने अपने भाई के विवाह में ज्योतिबा को निमन्त्रण दिया। वे लोग उच्च जाति के थे। ज्योतिबा भी बारात में थे। बारात में से एक व्यक्ति की दृष्टि ज्योतिबा पर गई और वह चिल्ला उठा, ''अरे, यह व्यक्ति यहाँ क्यों आ गया, इसे बाहर निकालो।'' विवाह समारोह में कोई शोरगुल न हो, इसलिए ज्योतिबा अपने आप वहाँ से चले गए। किन्तु अपमान की ज्वाला उनके हृदय में धधकती रही। उन्होंने इस घटना का उल्लेख बाकी लोगों से किया। किन्तु उन्होंने कहा कि इसमें नई बात कौन-सी है, ऐसा तो होता ही रहता है। किन्तु इस घटना ने उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया।

उन्हें समझ में आया कि समाज में ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने में शिक्षा ही एकमात्र समाधान है। विशेषकर उस समय नारी-शिक्षा तो न के बराबर थी। निम्न जाति के लोग लड़कियों को बिल्कुल पढ़ाते नहीं थे। उच्च कुल में भी नारी-शिक्षा का प्रचार बहुत कम था।

उन्होंने पूणे में कन्या पाठशाला खोली। कहते हैं कि भारत में सर्वप्रथम यही कन्या पाठशाला थी। ज्योतिबा फुले जी ने अपनी पत्नी सावित्रीबाई को भी पाठशाला में शिक्षा दी। शुरुआत में केवल छः-आठ लड़कियाँ थी। जातिप्रथा के कारण माता-पिता अपनी लड़कियों को इस पाठशाला में भेजते नहीं थे। जो लड़कियाँ पढ़ने जाती थीं, उनके माता-पिता को भी बहुत भला-बुरा सुनना पड़ता था। चार वर्षों में उन्होंने अठारह पाठशालाएँ खोल दीं। जिन लोगों

शेष भाग पृष्ठ ५१८ पर

श्रीमाँ सारदा देवी और गौरी माँ

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर में रहते थे। वहीं नौबतखाने में उनकी लीलासंगिनी श्रीमाँ सारदा देवी भी रहती थीं और ठाकुर की सेवा करती थीं। छोटे-से नौबतखाने में श्रीमाँ को बहुत कठिनाई होती थी। श्रीमाँ लज्जाशीला थीं। उन्हें पुरुषों के सामने आने में संकोच होता था। जब गौरी माँ ठाकुर के पास आयीं, तो ठाकुर ने उन्हें नौबतखाने में श्रीमाँ के पास ले जाकर कहा, "ओ ब्रह्ममयी ! आपको एक संगिनी चाहिए थी न? ये देखो आपकी एक संगिनी आयी है।" श्रीमाँ ने उन्हें बहुत प्रेम से अपनाया। गौरी माँ जैसी संगिनी मिलने से माँ को बाहर के कार्य में सुविधा होने लगी। गौरी माँ भी दक्षिणेश्वर में रहकर कृतार्थ हुईं और अपना जीवन परमाराध्य श्रीठाकुर और गुरुपत्नी श्रीमाँ की सेवा में उन्होंने समर्पित कर दिया।

इस घटना से लेकर जीवन के अन्त तक गौरी माँ और श्रीमाँ का माँ-बेटी का सम्बन्ध दृढ़ रहा। गौरी माँ श्रीमाँ की भगवती के रूप में पूजा करती थीं। वे कभी उत्तम वस्त्र, कभी सुमधुर फल, तो कभी अच्छी मिठाई बनाकर माताजी की सेवा में उपस्थित होती थीं। जब वे दोनों ठाकुर के विषय में बाते करतीं, तब एक अनिर्वचनीय आनन्द में विभोर हो जातीं और उन्हें समय का बोध न रहता। उन दोनों के मधुर सम्बन्ध का वर्णन करना कठिन है। श्रीमाँ के मुख से नि:सृत प्रत्येक शब्द गौरी माँ के लिये वेद वाक्य होता था। गौरी माँ भी कोई समस्या होने पर या नया कार्य करने हेतु श्रीमाँ से परामर्श लेती थीं। श्रीमाँ अपने पास आनेवाली भक्तिमती महिलाओं को गौरी माँ के पास भेजती थीं। श्रीमाँ कहती थीं, "जो बड़ा होता है, वह एक ही होता है। उसके साथ किसी की तुलना नहीं हो सकती। जैसे गौरदासी। वह क्या स्त्री है? वह पुरुष ही है, उसके जैसे कितने पुरुष हैं?"

एक दिन बेलूड़ स्थित नीलाम्बर मुखर्जी के भवन में रहते समय गौरी माँ को बिच्छु ने दंश दिया। उस दिन श्रीमाँ गौरी माँ के लिए इतनी चिन्तित थीं कि वे रात-भर उनके सिरहाने बैठी रहीं और बिल्कुल भी नहीं सोईं। माँ की सलाह से शल्योपचार करने का निर्णय हुआ। माँ ने ही दिन निर्धारित किया। शल्यक्रिया के पूर्व माँ ने गौरी माँ के सिर पर हाथ रखकर जप किया। शल्यक्रिया के समय गौरी माँ पीड़ा से छोटे बच्चे जैसे चिल्लाने लगीं।

श्रीमाँ अत्यन्त प्रेम से उनके सिर पर हाथ फेरते हुए उन्हें सान्त्वना देती रहीं।

गौरी माँ की माता गिरिबाला देवी कई बार ठाकुर के पास आयी थीं। उनका स्वरचित मातृसंगीत उन्हीं के सुमधुर कंठ से सुनना ठाकुर को पसन्द था। किन्तु लोगों के सामने गाने में उन्हें संकोच होता था। ठाकुर सबको बाहर भेजकर उनसे गाने को कहते। उनकी श्रीमाँ पर भी भक्ति थी, किन्तु ठाकुर के प्रति अधिक भक्ति-भाव था। इस विषय को लेकर गिरिबाला देवी का अपनी बेटी से बहुत तर्क-विर्तक होता था। गिरिबाला देवी कहतीं, "तुममें अभी भी बहुत-सी कमियाँ हैं। मेरे हृदय में त्रिपुरेश्वरी स्वयं विराजमान हैं। मुझे किसी की जरूरत नहीं।" गौरी माँ दुखपूर्वक कहतीं, "तुम्हारे भाग्य में होगा, तब तो तुम श्रीमाँ की महिमा समझोगी?" एक बार गौरी माँ जबरदस्ती अपनी माँ को श्रीमाँ के पास ले गयीं। श्रीमाँ दक्षिणेश्वर के नौबतखाने में गृह-कार्य में व्यस्त थीं। इन दोनों के वहाँ पहुँचने पर श्रीमाँ सहास्य उनके सामने आकर खड़ी हो गयीं । गिरिबाला देवी श्रीमाँ को देखकर विस्मित हो कहने लगीं, "अहा ! माँ, आप यहाँ ... ये ही मेरी वो.." ऐसे कहते-कहते गिरिबाला देवी श्रीमाँ के चरणों में लोटने लगीं और उनकी चरण रज माथे पर लगाने लगीं। यह देख श्रीमाँ ने हँसते हुए कहा, "क्या हुआ? आप ऐसा क्यों कर रही हैं?" गिरिबाला देवी के अन्त:करण में निश्चित रूप से कुछ अनुभूति हुई है, यह जानकर गौरी माँ आनन्द से कहने लगीं, "और क्या होगा? जो होना था वही हुआ।" यह सुनकर श्रीमाँ बहुत हँसने लगीं। इस घटना के बाद गिरिबाला देवी श्रीमाँ की महिमा मानने लगीं। श्रीठाकुर और श्रीमाँ एक बार उनके कलकत्ता-भवानीपुर स्थित घर में गये थे। वे जिस कमरे में बैठे थे, वह कक्ष परवर्ती काल में देवपूजा के लिए रखा गया। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, मास्टर महाशय, बलराम बसु आदि अनेक भक्त उनके घर गये थे।

श्रीठाकुर जानते थे कि श्रीमाँ से गौरी माँ का अधिक प्रेम

है। फिर भी कुतूहलवश उन्होंने गौरी माँ से पूछा, ''तुम्हारी भक्ति किस पर अधिक है?'' गौरी माँ ने एक भजन सुनाकर उत्तर दिया। उस भजन का भावार्थ है – ''हे वंशीधारी, राधा से तू बड़ा नहीं है। संकट में लोग तुम्हें मधुसूदन कहकर बुलाते हैं, पर तुम जब संकट में होते हो, तो बाँसुरी बजाकर राधा को बुलाते हो।'' भजन सुनकर संकोच से श्रीमाँ ने गौरी माँ का हाथ अपने हाथ में जोर से दबाया। इसका अर्थ जानकर ठाकुर हँसते हुए वहाँ से चले गये।

श्रीठाकुर के पास दक्षिणेश्वर में आनेवाली कुछ भक्त महिलाओं ने श्रीमाँ के गहने पहनने पर आपत्ति जतायी। उनके कुछ गहने पहनना उन लोगों को आदर्श विरोधी लगता था। वे महिलायें कहती थीं कि श्रीरामकृष्ण देव उनके पति हैं, उनकी पत्नी को यह शोभा नहीं देता। किन्तु गौरी माँ आदि अन्य महिलाएँ माँ के आचरण को ठीक समझती थीं। एक दिन श्रीमाँ ने महिलाओं की आभूषण सम्बन्धी बातें सुनकर सारे गहने उतारकर रख दिये। केवल सौभाग्यसूचक अलंकार रहने दिये। तब गौरी माँ उपस्थित नहीं थीं। जब गौरी माँ को सारी घटना ज्ञात हुई, तब वे उन महिलाओं की भर्त्सना करने लगीं। उन्होंने थोड़ी देर बाद माँ को कहा, ''अरे ! आप वैकुंठवासी लक्ष्मी हैं। आप आभूषण के बिना अच्छी नहीं लगेंगी। आपके स्वर्णालंकार पहनने से जगत का कल्याण होता है।'' गौरी माँ और योगीन माँ ने मिलकर श्रीमाँ को उत्तम वस्त्र और अलंकारों से सजाकर उन्हें प्रणाम किया। गौरी माँ ने कहा, ''आपका ये साज-शृंगार कितना सुन्दर दिख रहा है ! चलिए, ठाकुर को इनका दर्शन कराते हैं।'' श्रीमाँ राजी नहीं थीं, पर गौरी माँ जबरदस्ती उन्हें श्रीठाकुर के पास ले गयीं।

गौरी माँ श्रीमाँ को जगत् जननी के रूप में देखती थीं। गौरी माँ और श्रीमाँ का विलक्षण सम्बन्ध था ! कभी माँ-बेटी, कभी सहचरी, कभी सखी। उन दोनों में हँसी-मजाक भी होता। एक बार नौबतखाने के पास वाले घाट पर भोर होने के पहले ही माँ गंगा-स्नान करने गयीं। गौरी माँ माताजी के पीछे ऊपर की सीढ़ी पर थीं। पानी के पास की सीढ़ी पर कोई बड़ा जानवर लेटा था। माँ का पैर उस पर पड़ा। घबराकर वे पीछे हट गयीं और गौरी माँ से बोलीं, ''देखो, वहाँ घड़ियाल है।'' गौरी माँ ने हँसते हुए कहा, ''माँ, वह घड़ियाल नहीं, शिव है। बेचारा आपके चरणों के स्पर्श की अभिलाषा से वहाँ पड़ा हुआ है।'' श्रीमाँ ने कहा, ''मैं यहाँ डर से काँप रही हूँ और तुम्हें मजाक सूझ रहा है।'' गौरी माँ ने उत्तर दिया, ''माँ, आप अभया हैं। आपको भय कैसा?''

श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के कुछ दिन बाद श्रीमाँ भक्तों के साथ तीर्थयात्रा करने गयीं। वाराणसी और अयोध्या के दर्शन कर उन्होंने वृन्दावन में काला बाबू कुंज में निवास किया। माँ ने सोचा कि वृंदावन पहुँचते ही गौरी माँ से सहज ही भेंट हो जायेगी। उनके कहने पर स्वामी योगानन्द और स्वामी अद्भुतानन्द जी ने गौरी माँ को बहुत खोजा, पर उनका पता नहीं चला। एक दिन स्वामी योगानन्द जी राधारानी के आविर्भाव स्थल 'रावल' गये थे। वहाँ एक निर्जन स्थान पर दूर से ही उन्हें सूख रही गेरुआ साड़ी दिखी। उत्सुकतावश उन्होंने पास जाकर देखा। यमुना तट की एक गुफा में गौरी माँ योगासन में बैठकर ध्यान में मग्न थीं। वे चुपचाप वहाँ से निकल आये और श्रीमाँ को यह शुभ समाचार दिया।

दूसरे दिन श्रीमाँ कुछ भक्तों के साथ उस स्थान पर गयीं। श्रीरामकृष्ण देव की महासमाधि के बहुत दिनों बाद गौरी माँ और श्रीमाँ दोनों की भेंट हुई थी। वे दोनों गले लगकर फूट-फूटकर रोने लगीं। भक्तजन भी शोकाकुल हो गये। थोड़ी देर बाद उनमें बातचीत होने लगी। श्रीठाकुर ने लीला संवरण के बाद माँ को दर्शन देकर सधवा के वस्त्र एवं आभूषणों को रखने का आदेश दिया था। इसका शास्त्रीय आधार गौरी माँ से पूछने के लिये कहा था। गौरी माँ ने कहा, ''माँ, हमें किसी शास्त्रीय आधार की क्या जरूरत? हमारे लिए श्रीरामकृष्ण देव का आदेश ही शास्त्रवाक्य है। श्रीठाकुर नित्य विद्यमान हैं और आप स्वयं लक्ष्मी हैं। आपके सधवा का वेश त्यागने से जगत का अकल्याण होगा।''

श्रीठाकुर को देहत्याग करने के पूर्व गौरी माँ से मिलने की बहुत इच्छा थी। परन्तु उनकी भेंट न हो सकी। श्रीमाँ ने गौरी माँ से कहा, ''श्रीठाकुर बताकर गये हैं कि तुम्हारा जीवन जीवन्त विद्यमान जगदम्बा की सेवा में रत रहेगा।'' उस रात गुफा में वे दोनों माँ-बेटी ही थीं। धुनी जलाकर बातें कर रहीं थीं। उतने में दो साँप वहाँ आये। साँपों को नजदीक देखकर श्रीमाँ घबरा गयीं। गौरी माँ ने शान्त भाव से हँसते हुए माताजी से कहा, ''ये साँप ब्रह्मयमी के दर्शन करने के लिए आये हैं। प्रसाद लेकर चले जाएँगे।'' ऐसा कहकर गौरी माँ ने एक कोने में दामोदर का थोड़ा प्रसाद डाला। दोनों साँप वह प्रसाद लेकर धीरे-धीरे वहाँ से चले गये। माताजी चुपचाप यह सब देख रही थीं। साँपों के जाते ही माँ चिल्लायीं – ''सत्यानाश ! तू साँपों के साथ कैसे रह

सकती है?'' दूसरे दिन गौरी माँ को साथ ले वे वृन्दावन लौट आयीं।

एक दिन यमुनाजी में नौकाविहार करते समय श्रीमाँ यमुना-जल को अनिमेष देखने लगीं। मानो कोई दृश्य देख रही हों और किसी को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ा रही हों। शरीर का अधिकांश भाग नौका के बाहर था। पलभर में संतुलन चला जाता। उसी समय योगानन्द जी जोर से चिल्लाए और तुरन्त गौरी माँ तथा गोलाप माँ ने श्रीमाँ को पकड़कर उन्हें यमुनाजी में गिरने से बचा लिया।

वृन्दावन में माताजी हमेशा भावसमाधि में रहती थीं। एक दिन गौरी माँ ने माताजी को नि:स्तब्ध, बाह्यसंज्ञाशून्य अपलक दृष्टि और रुद्ध श्वास-प्रश्वास की अवस्था में देखा। मानो, राधा कृष्ण-विरह में उन्मना हो गयी हों। इतने में वहाँ योगीन माँ और स्वामी योगानन्द आये। सबने राधानाम लेना प्रारम्भ किया। तब कुछ समय बाद माँ सहजावस्था में आयीं।

गौरी माँ को वृन्दावन की पूर्ण जानकारी थी। उन्होंने माँ को राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, गोवर्धन पर्वत और विभिन्न दर्शनीय स्थलों का दर्शन कराया। सबने एक साथ वृन्दावन धाम की परिक्रमा की। श्रीमाँ एक साल वृन्दावन में रहीं। वे प्रयाग, हरिद्वार आदि तीर्थों की यात्रा कर गाँव लौट गयीं। गौरी माँ प्रयाग तक उनके साथ थीं। श्रीरामकृष्ण देव के लीला संवरण का दुख उनके लिए अत्यन्त क्लेशदायी था। इसलिए वे वृन्दावन धाम लौट गयीं।

श्रीमाँ कलकत्ता से कामारपुकुर चली गयीं। कुछ महीनोंपरान्त कलकत्ता की भक्तमंडली माँ के दर्शन के लिये व्याकुल हो गई। तभी गौरी माँ अचानक वहाँ आ गयीं। भक्तों की विनती पर वे श्रीमाँ को कलकत्ता चलने के लिये राजी करने कामारपुकुर गयीं। वहाँ वे दोनों माँ-बेटी ठाकुर की सुखद स्मृतियों को उजागर कर घंटों बातें करतीं। उससे उन्हें वेदना में भी आनन्द का थोड़ा अनुभव होता। वहाँ गौरी माँ को श्रीमाँ के साथ एकान्त वास का लाभ हुआ।

भक्तों के आग्रह पर श्रीमाँ गौरी माँ के साथ बलराम बाबू के घर कलकत्ता आयीं। कुछ दिनों बाद भक्तों ने उनकी व्यवस्था बेलूड़ में एक किराये के मकान में की। बीच-बीच में गौरी माँ आदि भक्त महिलाएँ उनके साथ रहती थीं। कभी-कभी मास्टर महाशय वहाँ जाकर श्रीमाँ को श्रीरामकृष्ण-वचनामृत की पाण्डुलिपि सुनाते थे। गौरी माँ कलकत्ता में श्रीमाँ के साथ कुछ समय रहकर वृन्दावन धाम चली गयीं। बाद में उन्होंने हिमालय की चार धाम यात्रा की।

गौरी माँ ठाकुर की पूजा के लिए गंगोत्री से गंगा-जल लेकर कलकत्ता आयीं और ठाकुर पूजा में समर्पित किया। उन्हें पता चला कि श्रीमाँ जयरामबाटी में हैं। उनके दर्शन के लिए गौरी माँ के प्राण छटपटाने लगे। वे जयरामबाटी गयीं और माँ के साथ बहुत दिनों तक रहीं। श्रीमाँ के प्रति उनकी श्रद्धा-भक्ति देखकर स्थानीय लोग प्रभावित हुए और उन लोगों की भी श्रीमाँ में भक्ति बढ़ गयी।

एक बार प्रसन्न मामा की पत्नी को गौरी माँ ने कहा, ''आप लोग श्रीमाँ को भगवती के रूप में नहीं देखते। वे साक्षात् भगवती सीता हैं। उनकी कृपा से आपके इहलोक-परलोक का कल्याण होगा। आप लोग श्रीमाँ से दीक्षा लेकर उनकी सेवा कीजिए। उन्हें रसोई आदि कामों में व्यस्त मत रखिये। आप लोग स्वयं रसोई संभालें। इससे आपके बाल-बच्चों का कल्याण होगा।'' तब वे श्रीमाँ से दीक्षा लेकर रसोई संभालने लगीं। श्रीमाँ ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर कहा, ''ये तो गौरदासी का चमत्कार है। उसी ने प्रसन्न मामा की पत्नी को रसोई का दायित्व लेने के लिए प्रेरित किया।''

एक दिन श्रीमाँ ने गौरी माँ से कहा, ''गाँव वाले कहते हैं कि मैं युवकों को संन्यासी बनाती हूँ। इसलिए जो लोग मेरे पास आयेंगे, उनकी जाति चली जाएगी।'' इस पर गौरी माँ ने कहा, ''माँ, आपसे संन्यास प्राप्त होना बड़े भाग्य की बात है। कितने लोग संन्यासी हो सकते हैं? तथापि जो देवी जाति-पंथ-भेद से ऊपर हैं, उनके पास आने से जाति चली जाएगी, ऐसा कौन कहता है?'' उसके बाद वे श्रीमाँ को प्रणाम कर दामोदर शिला गले में लटकाकर गाँव-गाँव जाकर श्रीमाँ की महिमा बताने लगीं। इसके फलस्वरूप श्रीमाँ के बारे में बकवास करने वाले लोग उनके पास आकर क्षमा माँगने लगे। तब श्रीमाँ ने कहा, ''अरे, गौरदासी ने तो लोगों को श्रीठाकुर के उपदेशों में आपादमस्तक डुबा दिया है।''

बंगाल की यात्रा के दौरान गौरी माँ ने नारियों की दशा को देखा। तब उन्हें ठाकुर के आदेश का स्मरण हुआ – ''जीवित दुर्गाओं की सेवा करो।'' उन्होंने बहुत सोच-समझ कर गंगा किनारे बराकपुर के पास कपालेश्वर गाँव में महिलाओं के लिए आश्रम स्थापित करने का निश्चय किया। ठाकुर का आदेश साकार होता देखकर श्रीमाँ ने भी आशीर्वाद दिया, ''आरम्भ करो बेटी ! आश्रम से अनेकों का कल्याण होगा।'' श्रीमाँ का आशीर्वाद पाकर गौरी माँ धन्य हो गईं। गौरी माँ ने 'श्रीसारदेश्वरी आश्रम' नामक आश्रम की स्थापना की।

(क्रमशः)

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (२७)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

शरीर कभी अमर नहीं रह सकता है

"मेरे पुत्र को कोई जीवित कर दो, मेरा इकलौता बेटा है। मेरा लाड़ला मुझे छोड़कर चला गया, मैं उसके बिना नहीं जी सकती।" हाथ में मृतपुत्र को लेकर क्रंदन करती हुई किसा गौतमी को देखकर सभी के हृदय पिघल गये, लेकिन उसके पुत्र की अकाल मृत्यु को यमराज के दरबार से कौन वापस ला सकता है? तब किसी ने उसे कहा, "भगवान बुद्ध के पास संजीवनी शक्ति है, वे तेरे पुत्र को अवश्य जीवित कर देंगे। तू उनके पास जा।" हाथों में मृतपुत्र की देह को लेकर गौतमी बुद्ध के पास आयी और रो-रोकर अनुनय-विनय करने लगी कि वे उसके पुत्र को जीवित कर दें।

बुद्ध ने कहा, "मैं तेरे पुत्र को अवश्य जीवित कर दूँगा, परन्तु उसके लिये मुझे कुछ राई के दाने चाहिए, वह तू ला देगी?"

"राई के दाने ! उसमें क्या है, अभी लाकर देती हूँ।"

"लेकिन एक शर्त है, जिस घर में कभी किसी की मृत्यु नहीं हुई हो, ऐसे घर से राई के दाने लाने हैं।"

'भगवान यह कोई बड़ी बात नहीं है, अभी मैं लेकर आती हूँ।" यह सुनकर किसा गौतमी की आँखों में आशा की चमक आ गई कि अब उसका पुत्र अवश्य जीवित हो जायेग।

वह घर-घर राई के दानों के लिए घूमने लगी। किसी ने कहा "हमारे दादा मर गये हैं।" दूसरे घर गई, तो उन्होंने कहा, "हमारे पिता मर गये हैं।" तीसरे घर गई, तो वहाँ कहा गया, "कुछ दिन पहले ही हमारे काका मर गये हैं।" किसी का युवा पुत्र, तो किसी की बेटी मर गयी थी। वह घर-घर गई, पर एक भी घर ऐसा नहीं मिला, जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। उसने बिलकुल निराश और हताश हो भगवान बुद्ध के पास आकर कहा, "प्रभु, आपके मँगाये गये राई के दाने मैं नहीं ला सकी, कोई घर मृत्यु से खाली नहीं है।" "तो तुझे समझ में आया कि मृत्यु अनिवार्य है। जिस शरीर को आत्मा छोड़ देती है, वह उसमें वापस नहीं आती है। इसलिये मृत्यु को स्वीकार करना ही पड़ता है।" भगवान बुद्ध ने गौतमी को देह कभी अमर नहीं हो सकती, इसका ज्ञान देकर उसे पुत्र-मोह और शोक से मुक्त किया। इसलिए ज्ञानी मनुष्य शरीर में आसक्त नहीं होते हैं, पर अमर आत्मा के साथ जुड़े रहते हैं।

नचिकेता ने मृत्यु का रहस्य प्राप्त किया

आत्मज्ञान प्राप्त करने वाले योगियों, सिद्धों को मृत्यु, मृत्यु के रूप में नहीं लगती। जब श्रीरामकृष्ण देव ने देहत्याग किया, तब उनकी लीला सहधर्मिणी श्रीमाँ सारदा देवी रोने लगीं और बोल उठीं, "माँ काली, तू मुझे छोड़ कर कहाँ चली गई?" वे श्रीरामकृष्ण को साक्षात् काली मानती थीं। उनका क्रन्दन देखकर श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें दर्शन दिया और कहा, "तुम क्यों रो रही हो? मैं कहाँ मर गया हूँ? मैं तो एक कक्ष से दूसरे कक्ष में आ गया हूँ।" इस दर्शन के बाद श्रीमाँ सारदा देवी को विश्वास हो गया कि श्रीरामकृष्ण भौतिक जगत के कक्ष से अब सूक्ष्म जगत के कक्ष में चले गये हैं, उनकी कभी मृत्यु नहीं है, वे सूक्ष्म रूप से सदा मेरे साथ हैं। अवतारी पुरुष सूक्ष्म रूप से, चैतन्य रूप से हमेशा रह सकते हैं और भक्तों को मार्गदर्शन भी दे सकते हैं। क्योंकि मृत्यु सिद्ध योगियों के लिये स्थूल से सूक्ष्म में जाने की सहज घटना है। लेकिन सभी को यह बोध नहीं होता, इसलिए उन्हें मृत्यु भयावह लगती है।

यदि मृत्यु को जानना हो, तो जीवन-विद्या जाननी चाहिए। बालक नचिकेता ने मृत्यु के देव यमराज से इस जीवन-विद्या को जानकर मृत्यु का रहस्य प्राप्त किया था। कठोपनिषद की यह सुप्रसिद्ध कथा है। जब नचिकेता के पिता ने यज्ञ के बाद ब्राह्मणों को दान में बूढ़ी गायें दीं, तब बालक नचिकेता ने पिता से पूछा कि आपने ऐसा क्यों किया और आप मुझे किसे दान में देंगे? पुत्र के बार-बार प्रश्न पूछने पर पिता ने चिढ़कर कहा, "जा, मैं तुझे यम को दान में देता हूँ।" पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए नचिकेता यमलोक में गया। यमराज बाहर गये हुए थे, इसलिये वह भूखा-प्यासा यम के दरवाजे पर तीन दिन तक बैठा रहा। यमराज आये। उन्होंने बालक की ऐसी निष्ठा

देखी, तो प्रसन्न हो गये। उसे वरदान माँगने को कहा। नचिकेता ने कहा, ''मुझे जीवन-विद्या सिखाइये, मृत्यु का रहस्य समझाइये।''

''अरे, अभी तो तू बालक है, तू जानकर क्या करेगा? बड़े-बड़े ऋषि तपस्वी भी यह नहीं जान सकते हैं। यह बहुत जटिल है, तू उसे छोड़ दे, कुछ और माँग ले।''

''नहीं, मुझे तो यही जानना है। यदि दूसरे सब नहीं जान सकते, तो मुझे अवश्य जानना है।'' बालक ने कहा।

यमराज ने कहा, ''अरे, इसके बदले में मैं तुझे राजपाट, अपार धन-सम्पत्ति, हाथी-घोड़े, नर्तकियाँ देता हूँ।''

''नहीं मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस, आप मुझे जीवन और मृत्यु के रहस्य को समझाइये।'' अनेक प्रलोभन देने के बाद भी बालक अपनी इच्छा से विचलित नहीं हुआ। यह देखकर यमराज और अधिक प्रसन्न हो गये तथा उसे आत्मविद्या का ज्ञान दिया।

जब मन की सभी एषणाएँ छूट जायँ, कोई प्रलोभन ललचा न सके, अन्तर में आत्मज्ञान प्राप्त करने की एक मात्र लालसा हो, तब नचिकेता, कुमार सिद्धार्थ या स्वामी विवेकानन्द की तरह आत्मज्ञान प्राप्त होता है और जीवन-मृत्यु का रहस्य समझ में आता है। केवल ऊपरी, छिछली जिज्ञासा हो या आकस्मिक संयोगों के लिए इच्छा जागी हो, तो यह रहस्य प्राप्त नहीं होता है। कदाचित् बौद्धिक ज्ञान मिल भी जाए, तो वह जीवन में उतरता नहीं है, उसकी अनुभूति नहीं होती है। इसलिए वह चेतना का भाग नहीं बनता है।

यमराज ने नचिकेता से कहा –

''एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।।''

सम्पूर्ण भूतों में छिपी यह आत्मा प्रकाशमान नहीं होती, यह तो सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र और सूक्ष्मबुद्धि से ही देखी जाती है। इस आत्मा को कोई मार नहीं सकता। यह शाश्वत है, सनातन है, अजर-अमर है। यह आत्मज्ञान यमराज ने नचिकेता को दिया। उसकी अन्तर्दृष्टि खुल जाने से वह मृत्यु के रहस्य को भी समझ सका।

वास्तव में मृत्यु से जीवन का अन्त नहीं हो जाता, जीवन तो शाश्वत है। शरीर के अन्त के साथ जीवन कभी नष्ट नहीं होता है। यही है जीवन और मृत्यु का नियम। जो इस नियम को जानकर अपने जीवन में उसका पालन करते हैं, वे जीवन के स्वामी बनकर, जीवन और मृत्यु के खेल में विजयी होकर पृथ्वी के ऊपर के चक्र को सार्थक करते हैं। उनके समग्र जीवन में शान्ति और स्थिरता आ जाती है और वे अविरत परम शान्ति की ओर अग्रसर होते रहते हैं।

निराशा के घोर बादल घिर जाएँ, तब क्या करें?

मनुष्य के जीवन में कभी-कभी ऐसा समय आता है कि कहीं से भी आशा की कोई किरण दिखायी नहीं देती है। मन ऐसा टूट जाता है कि कई बार तो आत्महत्या के विचारों की ओर दौड़ता है, तब जीवन नीरस हो जाता है। ऐसे स्थिति में क्या करें? ऐसे मन को पुनः सही रास्ते पर लाने के लिये कई उपायों का प्रयोग कर देख सकते है। कई लोगों के द्वारा इन उपायों के प्रयोग से नया जीवन प्राप्त करने के दृष्टान्त देखने को मिलते हैं। इनमें से मुख्य उपाय इस प्रकार हैं –

विश्वासपात्र स्वजन या सच्चे सलाहकार के पास जाना

आपत्ति के समय हड़बड़ी में कदम उठाने से पहले अपने स्वजन के पास, जिस पर अत्यन्त विश्वास हो, चले जाना चाहिए या किसी सच्चे मार्गदर्शक या सलाहकार के पास जाकर अपनी समस्या बतानी चाहिए। पश्चिम के देशों में तो लोग मनोचिकित्सक के पास स्वयं जाते हैं और सलाह लेते हैं। लेकिन हमारे यहाँ लोग मनोचिकित्सक के पास जाने में हिचकिचाते हैं। इसलिए अपने स्वजन के पास जाकर हृदय खोलकर सारी बातें बता देना एक उपाय है। किसी से अपना दुख कह देने से मन हल्का हो जाता है और आधी समस्या तो अपने आप कम हो जाती है। 'इस समस्या में कोई मेरे साथ है', यह भावना मन में आने से समस्या इतनी जटिल नहीं लगती है। धीरे-धीरे समस्या भी हल हो जाती है और मन भी स्वस्थ होने लगता है।

कभी-कभी तो मन का विरोध इतना प्रबल होता है कि वह किसी के पास जाने को भी तैयार नहीं होता। केवल मरने को तत्पर हो जाता है। ऐसे समय जिसे आप अत्यन्त चाहते हो, या जो व्यक्ति आपका श्रद्धापात्र हो, जो व्यक्ति आपको उत्कट प्रेम करता हो, उसका स्मरण करना चाहिए। तुम्हारे आत्मघाती कार्य करने से उसे कितना दुख होगा, उसके बारे में सोचो। ऐसे व्यक्ति का सतत स्मरण करने से भी मन शान्त होने लगता है और फिर व्यक्ति स्वस्थ मन से सोच सकता है। **(क्रमशः)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३४)

स्वामी भूतेशानन्द

उसके बाद आदर्श और उद्देश्य के सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा नहीं होने से भी बहुत समय व्यर्थ चला जाता है। जैसे मैं अपनी बात कह रहा हूँ। बचपन से ही साधु होने की इच्छा थी। किन्तु साधु होना क्या है, किसे कहते हैं, यह ठीक से नहीं जानता था। इसीलिए कभी बड़े-बड़े बाल रखता था, कभी मुंडन कराता था। जैसे हमलोग ठाकुर का ध्यान करते हैं। ठाकुर के सम्बन्ध में विभिन्न लोगों की विभिन्न प्रकार की धारणा है। वह तो रहेगी ही। क्योंकि उनके जीवन में वैचित्र्य है। जितना ही हमलोगों में परिवर्तन होता जाता है, उतना ही हमारा आदर्श भी अधिक स्पष्टतर होता जाता है। आदर्श अभिव्यक्त होता जाता है। जैसे हम दूर से कोई भवन अस्पष्ट रूप से देख रहे हैं, मानों एक ढाँचा खड़ा हो। किन्तु जितना ही भवन की ओर आगे बढ़ते जाते हैं, उतना ही भवन हमारे लिए स्पष्ट से स्पष्टतर होता जाता है।

– महाराज ! कहा जाता है कि जितना ही हम आदर्श की ओर आगे बढ़ते जाते हैं, यह आदर्श उतना ही दूर चला जाता है। क्या इसे अभिव्यक्त होना कहते हैं?

महाराज – नहीं, अभिव्यक्त होना अर्थात् स्पष्ट होना। यह जो मैंने भवन का उदाहरण दिया। अभिव्यक्त करना माने दूरी बढ़ना नहीं, दूरी कम होना है।

प्रश्न – महाराज ! जप करते समय बिना आवाज किये होंठ, जीभ न हिलाकर जप करने को क्यों कहा जाता है?

महाराज – मन को संयमित, एकाग्र करने के लिए कहा जाता है। मन जितना ही संयमित रहेगा, उतना ही बाह्य होंठ हिलना और ध्वनि करना बन्द हो जायेगा। मन के एकाग्र होने पर ऐसा ही होता है। हमलोग एकाग्रता के लिए इसके विपरीत ध्वनि न कर जप करते हैं।

– महाराज ! माला से जप करने के पहले क्या कर-जप करना चाहिए ?

महाराज – हाँ ! मैं ऐसा ही कहता हूँ। कर-जप ही श्रेष्ठ है। जितना ही बाह्य आश्रय लोगे, उतना ही मन बिखरेगा, चंचल होगा।

– महाराज ! कई बार अधिक जप करने की इच्छा से बहुत शीघ्रता हो जाती है। तब क्या करें?

महाराज – बहुत शीघ्रता मत करना। जैसा कहा था, उसी गति से करने की चेष्टा करना। संख्या ही वास्तविक वस्तु नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ठाकुर में कितना मन लगाकर जप किया। याद रखना, तुम सभी लोग ठाकुर के हो।

प्रश्न – महाराज, मन ही गुरु है, इस कथन का क्या तात्पर्य है?

महाराज – मन ही गुरु नहीं, अन्त में मन ही गुरु हो जाता है । अर्थात् मन शुद्ध होते-होते, अन्त में शुद्ध मन में जो विचार उठता है, वही गुरु वाक्य है।

– मन शुद्ध हो गया है, कैसे समझेंगे?

महाराज – जिन विचारों और भावनाओं को तुम अशुद्ध समझते हो, जब वे मन में बिल्कुल न आयें, तब समझ लेना कि मन शुद्ध हो गया है।

– महाराज ! वाणी का संयम किसे कहते हैं?

महाराज – अनावश्यक या निष्प्रयोजन नहीं बोलना वाणी-संयम है। तब मैं उत्तर काशी में था। मैंने संकल्प लिया कि अनावश्यक नहीं बोलूँगा। मैंने देखा कि दिन-पर-दिन बीतता जा रहा है, लेकिन मुझे बोलने की आवश्यकता ही नहीं पड़ रही है। सचमुच यदि हमलोग सचेत रहें, तो देखेंगे कि हमलोगों को बोलने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है।

– महाराज ! लगता है, आप वहाँ अकेले थे। (सभी हँसते हैं)

महाराज – ऐसा क्यों, वहाँ अन्य सन्त भी थे।

– क्या भिक्षा लेने जाने पर 'ॐ नमो नारायण हरि' बोलना नहीं पड़ता था?

महाराज – नहीं, वह भी नहीं बोलना पड़ता था। भिक्षा की पंक्ति में खड़ा होता, झोली फैला देता, भिक्षा मिल जाती थी। गंगा के तट पर बैठकर भोजन कर चला आता।

– महाराज! क्या दूसरे साधु लोग बात नहीं करते थे?

महाराज – बोलते थे, किन्तु कोई किसी से अनावश्यक बात नहीं करता था। यदि कोई बात करना चाहता भी, तो उधर के साधु लोग अधिक मिलते-जुलते नहीं थे। इसलिए बात करने की बहुत कम आवश्यकता पड़ती थी। मैं मौन रहूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा तो किया नहीं था। अनावश्यक बात नहीं करना ही वाणी-संयम है। सूक्ष्म चिन्तन का स्थूल या बाह्य रूप वाणी है। वाणी-संयम या वाणी का नियन्त्रण करना सम्भव है। किन्तु विचारों को रोकना बहुत कठिन है। सर्वदा विचार-प्रवाह चलता रहता है। मन को विचार-शून्य करना कठिन है। आश्चर्य की बात यह है कि हमलोग उसी विचार-प्रवाह में डूबते जाते हैं, बहुत देर बाद जब सजग होते हैं, तो कहते हैं कि क्या व्यर्थ की बातें सोच रहा था ! अर्थात् हम सजग नहीं थे। मन हमें जिधर ले जा रहा था, उसी ओर हम जा रहे थे। मन पर धीरे-धीरे ध्यान देने से, मन का निरीक्षण-परीक्षण करने से मन का प्रवाह हमें खींच कर नहीं ले जा सकेगा। मन पर संयम होता है। मन हमें वशीभूत नहीं कर सकेगा। हम लोग मन को अपने वश में कर सकेंगे। मन के एक दूसरे दृष्टिकोण पर मैं बहुत सोचता हूँ। वह है – एक ही मन दो भागों में विभक्त हो जाता है। एक द्रष्टा है और दूसरा दृश्य है। द्रष्टा मन और दृश्य मन। द्रष्टा मन अब दृश्य मन का निरीक्षण करता है, तब मन के साथ हमारे डूबने की सम्भावना नहीं रहती है। इसीलिए स्वामीजी कहते हैं कि आसन पर बैठते ही ध्यान प्रारम्भ मत करना। कुछ देर मन का निरीक्षण करो, मन क्या कर रहा है, उसे देखो। देखना, धीरे-धीरे मन की चंचलता बन्द हो जायेगी। मन एकाग्र होगा। उसके बाद ध्यान करना। ऐसा करते-करते हो सकता है कि नाश्ते की घंटी बज जाये। (सभी हँसते हैं) इसीलिए तो कह रहा था कि मन को विचारशून्य करना अत्यन्त कठिन है। एक श्लोक में कह रहे हैं –

आसुप्ते आमृते कालं नयेत् वेदान्तचिन्तया।
दद्यात् नावसरं किञ्चिदपि कामादीनां मनागपि।।

अर्थात् जब तक निद्रा न आ जाय, जब तक यह देह है, तब तक सर्वदा मन को वेदान्त-चिन्तन से परिपूर्ण रखना होगा। क्यों? क्योंकि जिससे कामादि शत्रुओं को मन में प्रवेश करने का अवसर न मिल जाए। पढ़ो, पढ़ो, उपनिषद का अध्ययन करो।

हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) बिलकुल मानो म्यान से निकली हुई तलवार थे। देखता हूँ, अन्तिम समय में भी बहुत सावधान थे। सदा सजग थे। जैसे चित्र में बैठे हुए हैं, वैसे ही बिल्कुल सीधे बैठते थे। कभी किसी के सहारे नहीं बैठते थे। साधारणत: बहुत कम बोलते थे। किन्तु धर्म-चर्चा बहुत करते थे। अन्य चर्चा भी होती थी। उसके बाद बहुत चिन्तन करते थे। उपनिषद के विभिन्न श्लोकों पर गहन चिन्तन करते थे। विचार, शास्त्र-अध्ययन, ध्यान-भजन, जो भी क्यों न करो, जैसे भी हो, अपने को उसमें निमग्न रखो। विरले एक-दो विशेष साधना के अधिकारी को शास्त्र-अध्ययन की आवश्यकता नहीं भी हो सकती है, किन्तु हमलोग जैसे सामान्य साधक को शास्त्र-अध्ययन और विचार, चिन्तन की अत्यन्त आवश्यकता है। **(क्रमशः)**

नेह का दीप जलायें

मुक्ता प्रसाद गुप्त 'रत्नेश', भिण्ड (म.प्र.)

आओ नेह का दीप जलायें । जीवन का कर्तव्य निभायें ।।
क्या रखा द्वेष-विद्वेष में, क्योंकर जीते हो क्लेश में,
अब से त्यागो कुचेष्टायें, हम सबके ही मन सरसायें ।
आओ नेह का दीप जलायें ।।
बोलो क्या साथ में जाता? फिर बेइमानी क्यों अपनाता?
जो जोड़े सब जग से नाता, ऐसा भाव क्यों नहीं लाता?
आओ ये भाव सबमें उपजायें । आओ नेह का दीप जलायें ।।
आतंक जीवन का लक्ष्य नहीं, अपराध न होता क्षम्य कहीं,
कर्मफल अवश्य मिलते हैं, वेद-पुराण सभी कहते हैं,
कृष्ण सन्देश ध्यान में लायें, आओ नेह का दीप जलायें ।।
वर्ग-जाति-भेद का करें अन्त, हम सबका पालनहार अनन्त,
हम धरा पर लायें नव बसन्त, जग में सब बनें नैतिक सन्त,
जीवन में ऐसी ज्योति जलायें । आओ नेह का दीप जलायें ।।

अन्धकार से प्रकाश की ओर

विजय कुमार श्रीवास्तव, सीतापुर

हमारे देश के प्राचीन वैदिक ऋषियों ने अपने दीर्घकालीन तप के आधार पर जिस अनुभवजन्य ज्ञान को हमें प्रदान किया, वह हमारे लिये सदैव से ही एक अमोघ वरदानतुल्य रहा है। आज के युग में हम सारे कार्य अपने या अपने परिवार के लिये ही करते हैं। ऐसे कुछ विरले ही लोग हैं, जो समाज के बारे में सोचते हैं। किन्तु प्राचीन ऋषियों की सोच और उनकी साधना समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता के लिये होती थी। व्यक्ति सांसारिक जीवन से ऊपर उठकर ईश्वरोन्मुखी बने, उत्कर्ष-मार्ग पर चलकर सुखी जीवन जीने योग्य बन सके, ऐसा उनका चिन्तन था। सांस्कृतिक त्योहारों से समाज को जोड़ने में भी उनकी मानव-कल्याण की भावना थी। दीपावली का त्योहार भी इसी भावना से ओतप्रोत, सांस्कृतिक एकीकरण से अनुप्राणित प्रमुख भारतीय पर्व रहा है।

दीपावली का पर्व हमें वैदिक काल से लेकर आज तक 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का दिव्य संदेश देता चला आ रहा है। हम अंधकार से प्रकाश की ओर अग्रसर हों, अज्ञान से सद्ज्ञान की दिशा में पथ संधान करें व अपने कलुषित जीवन में सद्भावना लाकर उन्नति के शिखर का वरण करने हेतु प्रेरित हों, यही तो दीपावली का तात्पर्य है। इसे भारत में ही नहीं, अन्य समान सांस्कृतिक विचारधारा वाले बहुत-से देशों में भी गर्व के साथ मनाया जाता है। प्रमुख रूप से इसे हम 'प्रकाश पर्व' के रूप में मनाते हैं। इसमें दीप प्रज्वलित करते हैं, फुलझड़ियाँ तथा प्रसन्नता के प्रतीक पटाखे दागने की परम्परा है। इनसे सांस्कृतिक उदासीनतावश सो रहे लोगों को जगाने व फुलझड़ियों के माध्यम से सामूहिक प्रसन्नता बिखेरी जाती है। दीपों के प्रकाश में धरा पर जीवन यापन कर रहे असंख्य जीवों के जीवन में व्याप्त निराशा, अन्धकार और वेदना को हटाकर उनमें जीवन्त चेतना और प्रकाशरूपी प्रसन्नता प्रदान करने का विचार समाहित है।

प्राय: हम अपनी स्थूल आँखों से प्रकाश को देखते हैं। वास्तव में हम प्रकाश को नहीं बल्कि प्रकाश में देखते हैं। जिसे हम प्रकाश समझते हैं, वह सच्चा प्रकाश नहीं है। वास्तविक प्रकाश तो हमारे अन्दर ही है, जो हमारे अन्त:करण में विद्यमान प्रकाशक, प्रेरक और पालक परमात्मा का प्रकाश है। बाह्य जगत के प्रकाश को तो बादल भी आवृत कर सकते हैं। कितनी ही अंधियारी रातों और घनघोर बादलों में जो प्रकाश हमें देखने की शक्ति प्रदान करता है, वही तो असली प्रकाश है। हम दीपावली की रात्रि में परम्परागत मिट्टी के दिये जलाते हैं। इसमें तेल और बाती के संयोग से उत्पन्न लौ से प्रादुर्भूत प्रकाश से अन्धकार दूर होता है। यह मिट्टी का दिया किस चीज का द्योतक है? यह मनुष्य की काया का प्रतीक है और उसमें जल रही बाती हमारी प्रवृत्तियों का प्रतीक है। जब इस देह का सम्बन्ध हमारी वृत्तियों से होता है, तो हमारी आध्यात्मिक चेतना के प्रभाव से इनके जलने मात्र से ही हमारे आन्तरिक स्रोत से प्रेम, करुणा और स्नेह की स्निग्ध ज्योति प्रज्वलित होती है।

हमें दीपावली का त्योहार तो अवश्य ही मनाना चाहिए किन्तु उसके पूर्व अपने कुसंस्कारों और कुप्रवृत्तियों को भी जला देना चाहिए। कवि नीरज के काव्य में निहित मानवीय चिन्तन को हमें अवश्य आत्मसात् करना चाहिए –

खुले मुक्ति का वह किरण-द्वार जगमग
उषा जान पाये, निशा आ न पाये।
जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना,
अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाये।।

अब प्रश्न यह है कि कैसे सम्पूर्ण वसुधा का अंधकार दूर होगा? यह तभी सम्भव है, जब हम केवल एक पर्व पर ही नहीं, अपितु प्रति दिन स्नेह-दीप जलायें और गाते चलें –
दीप से दीप जलाते चलो, स्नेह की सरिता बहाते चलो।

दीपावली किसी एक धर्म-विशेष का त्योहार नहीं, मानवता का त्यौहार है। इसका सभी सम्प्रदायों से हार्दिक सम्बन्ध है। ईसाई धर्म में ऐसा उल्लेख है कि एक समय चारों ओर गहन अंधकार व्याप्त था। परमेश्वर में प्रकाश की इच्छा जाग्रत हुई और प्रकाश हो गया। जैन धर्म में आत्मा की तुलना सूर्य से की गयी है, जिसमें सदैव आलोकित करने की शक्ति विद्यमान रहती है। बौद्ध धर्म में दीपक बनकर स्वयं को आलोकित करने की शिक्षा दी गयी है। भगवान बुद्ध ने महानिर्वाण के पूर्व अपने शिष्यों को यही उपदेश दिया – **अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा अनञ्ञसरणा**
धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा।

अर्थात, हे भिक्षुओ ! आत्मदीप बनकर बिचरो। तुम

अपनी शरण में जाओ, किसी अन्य का सहारा न ढूँढ़ो। केवल धर्म को अपना दीपक बनाओ, केवल धर्म की ही शरण में जाओ। इतना ही नहीं, इस्लाम में भी 'नूरे इलाही' कहकर आत्मा के दिव्य प्रकाश से जीवन के उत्थान की बात कही गयी है।

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव के हृदय में विद्यमान दिव्य परमात्मा का प्रकाश परम तेज और आनन्द का स्रोत है। हमारी सांस्कृतिक प्रथाओं सहित पावन अवसरों पर दीप प्रज्वलन का विधान है। ऐसी मान्यता है कि पावन भावनाओं से जलाया हुआ दीप हमें दिव्य प्रेरणा देता है। 'यजुर्वेद' का मंत्र है – **तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्।।**

अर्थात् सबके दिव्य जनक और प्रेरक के वरणीय तेज का हम ध्यान करते हैं, जिससे कि वह हमारी बुद्धियों को मंगल प्रेरणा दे।

वास्तव में दीप के प्रकाश का मानव जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। यह हमारी अनन्त प्रेरणा का स्रोत है। रात के अंधकार को तिल-तिल जलाकर प्रकाश से भर देना इसकी सदैव ही विशेषता रही है। एक स्थान पर कवि कहता है –

''मैं माटी का दीप, मनुज को देता आया सदा उजाला।''

एक अन्य स्थान पर दीपक का सांकेतिक महत्त्व द्रष्टव्य है – **''प्रण मेरा हर पथिक को दे दूँ उजाला,**
ताकि मन उनका कभी भी हो न काला,
मैं भले ही टूट मिट्टी में समाऊँ,
जन्म लूँ फिर से कभी फिर जगमगाऊँ।''

अन्त में वेद की दिव्य वाणी से अपने हृदय को जोड़ते हुए पाठकों के प्रति ज्योतिर्मय भविष्य की कामना करता हूँ, ''नवयुग के इस जन्म के साथ-साथ हमारे भी नये चैतन्य का जन्म हो। आओ, हम सब मिलकर विगत अतीत को तिलांजलि देकर तीव्र गति से ज्योतिर्मय भविष्य की ओर चलें।'' ○○○

प्रभु से नाता पाल

पं. गिरिमोहन गुरु, होशंगाबाद

परम सत्य है मृत्यु यह जीवन है भ्रमजाल ।
जग के नाते की तरह प्रभु से नाता पाल ।।
मानव मन में ही छिपा ईश्वर का निज रूप ।
माया के कारण नहीं दिखता आत्म स्वरूप ।।
अस्थिर रहकर कभी नहीं मिलेगा सत्य ।
सत्य नाम है ईश का बाकी सभी असत्य ।।
देह गेह में नेह से आत्माराम निवास ।
दोनों ऐसे मिल गये, ज्यों वसुधा आकाश ।।

पृष्ठ ५०३ का शेष भाग

प्रकार ज्ञानाग्नि द्वारा दग्ध क्लेशों के द्वारा आत्मा पुन: कष्ट नहीं प्राप्त करती। क्लेशों के दग्धबीज होने पर ही योगी जीवन्मुक्त होते हैं। उनमें राग द्वेषादि की छाया-सी दिखाई देती है, पर वे कभी प्रकट नहीं होते हैं।

उपसंहार

पातंजल योग दर्शन सांख्य दर्शन पर आधारित है। अत: यह मान लिया जाता है कि योगशास्त्र में रुचि रखने वाले व्यक्ति को सांख्यशास्त्र का परिचय है। पतंजलि ने भी प्रकृति, पुरुष, महत् तत्त्व आदि सांख्य विषयक इकाईयों को समझाने का प्रयत्न नहीं किया है। यहाँ संक्षेप में योगशास्त्र में चित्त के विषय में जो संकेत मिलते हैं, उसके आधार पर हमने उसके स्वरूप को समझने का प्रयत्न किया है। चित्त के उपरी स्तर पर पाँच वृत्तियाँ रहती हैं, उसकी पाँच प्रकार की भूमियाँ हो सकती हैं तथा उसकी गहराई में पाँच क्लेश होते हैं। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है। यम-नियमादि योगांगों की साधना से चित्त की भूमियों में परिवर्तन किया जाता है। तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान रूप क्रियायोग के द्वारा क्लेशों को तनु किया जाता है। इन सभी योगांगों का विस्तृत विवरण योगशास्त्र तथा उसकी अधिकृत टीकाओं में उपलब्ध है। ○○○

जिसके भाव में कपटता नहीं रहती, उसीको सच्चिदानन्द-स्वरूप परमेश्वर का लाभ होता है । तात्पर्य यह है कि केवल सरलता और विश्वास के बल पर ही ईश्वर को पाया जा सकता है ।

– श्रीरामकृष्ण देव

ईशावास्योपनिषद (११)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

इसके बाद छ: मन्त्र हैं। तीन-तीन मन्त्रों का त्रित्व है। ऐसे दो त्रित्व यहाँ पर हैं। नौ, दस, ग्यारह इनमें अविद्या और विद्या की चर्चा है। बारह, तेरह, चौदह इनमें असम्भूति और सम्भूति की चर्चा है। यह बात यहाँ पर कैसे लाकर रखी गयी? इसको समझने की थोड़ी-सी हम चेष्टा करें, तो ऐसा लगता है कि उपनिषद का जो मर्म है, उस मर्म को हम कुछ हद तक समझ सकते हैं। जैसे हमने कहा – पहले मन्त्र में सिद्धान्त का प्रतिपादन, दूसरे मन्त्र में उसका व्यवहार, तीसरे मन्त्र में बताया कि यदि तुम ऐसा नहीं करोगे, तो तुम आत्मतत्त्व का हनन करने वाले बनोगे। चौथे और पाँचवे मन्त्रों में आत्मतत्त्व कैसा है, उसका स्वरूप बताया। छठें मन्त्र में कहा गया कि जो आत्मतत्त्व को जानना चाहता है, वह साधना किस प्रकार से करे? कैसे उस साधक की समदर्शी दृष्टि हो जाती है। सातवें मन्त्र में वर्णन किया गया कि जब वह सिद्ध हो गया, ब्रह्मज्ञानी बन गया, विज्ञानी बन गया, तो कैसा हो जाता है? आठवें मन्त्र में आत्मा कैसी है, इसका निरूपण किया गया। ठीक है, वह ब्रह्मज्ञानी हो गया। सिद्धान्त की दृष्टि से देखें, तो हमको ऐसा लगेगा । व्यवहार में इस सिद्धान्त का प्रयोग कहाँ तक किया जा सकता है? इसलिये किस प्रकार से इस ऊँचे सिद्धान्त का प्रयोग अपने जीवन में करना चाहिए, यहाँ दो त्रित्वों में बताते हैं। पहले त्रित्व में अविद्या और विद्या की बात कहते हैं। नौवें मन्त्र में कहते हैं कि इस स्थिति को पाने के लिए क्या उपाय है?

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायांरताः।।९।।

– जो अविद्या की उपासना करते हैं, वे अन्धकार में जाते हैं और जो विद्या की उपासना करते हैं, वे उससे भी अधिक अन्धकार में जाते हैं।

कहते हैं कि ठीक है, तुमने आत्मतत्त्व और आत्मविज्ञानी कैसा होता है, इसकी बात सुनी। आत्मविज्ञानी बनने के लिए, इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए तुम्हें साधना करनी पड़ेगी। साधना क्या है? अविद्या और विद्या, इन दोनों की साधना करनी पड़ेगी। अविद्या और विद्या की साधना किस प्रकार से करनी पड़ेगी? वह यहाँ पर वर्णित होता है। जैसे आप मुण्डक उपनिषद में पढ़ते हैं। एक महागृहस्थ शौनक ऋषि हैं। वे अंगिरा ऋषि के पास जाते हैं और उनसे प्रश्न पूछते हैं – **कस्मिन् नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति इति** – भगवन् ! आप यह बता दीजिए कि किसको जानने से सब कुछ का जानना हो जाता है। शौनक के मन में जिज्ञासा रही होगी कि यह जीवन अल्प है और ज्ञान का क्षेत्र तो बहुत विस्तृत है। इस जीवन में एक क्षेत्र का पूरा-पूरा ज्ञान ही समेटा नहीं जा सकता है, तो फिर आखिर जानना हो, तो क्या किया जाये? कोई ज्ञान का अर्क है क्या? जिस अर्क को मैं जान लूँ, तो जो कुछ जानने का है, वह ज्ञात हो जाय। ऐसी जिज्ञासा लेकर शौनक जाते हैं और पूछते हैं – भगवन् ! कुछ ऐसा है क्या जिसको जान लेने से सब कुछ का जानना हो जाय? **यथा एकस्मिन् मृत्पिण्डे विज्ञाते सर्वं मृण्मयं विज्ञातम् स्यात** – जैसे मिट्टी के एक लोंदे को जान लेने से जो कुछ भी मिट्टी का बना है, वह सब जान लिया जाता है। क्या इसी प्रकार ज्ञान के क्षेत्र में ऐसा कुछ है, जिसको मैं जान लूँ, तो सब कुछ का जानना हो जाये? इसके उत्तर में अंगिरा ऋषि कहते हैं – **द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च** – दो विद्याओं को जानना पड़ता है शौनक ! एक है परा, दूसरी है अपरा।

ठीक यहाँ पर इन्हीं अर्थों में अविद्या और विद्या की बात कही गयी है। यहाँ पर यह कहते हैं कि जैसे शौनक को अंगिरा ने बताया कि ठीक है, दो विद्याओं – परा, अपरा को जानो। यहाँ पर कहते हैं – अविद्या को जानो और विद्या को जानो। पर कैसे जानो? यहाँ बताया गया कि अविद्या

क्या है और विद्या क्या है? तो यहाँ पर भाष्यकार भगवान शंकराचार्यजी अविद्या का अर्थ लेते हैं कर्म। जो विद्या के विपरीत हो, विद्या का विरोधी हो। उस युग में कर्मकाण्ड बहुत प्रचलित था। लोग यज्ञादि कर्म करते थे। उस यज्ञादि कर्म का लक्ष्य केवल स्वर्ग पाना था। इसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। इसे अविद्या कहा गया है। अविद्या क्या है? केवल कर्म करना, केवल कर्म में लगे रहना, केवल कर्म किये ही जा रहे हैं। हम आहुतियाँ प्रदान करते हैं, तो इस कर्म को अविद्या के नाम से यहाँ पर पुकारा गया है। अविद्या माने कर्म। कर्म की पृष्ठभूमि से मानों हम अज्ञानी बने रहे, वह अविद्या का क्षेत्र है। विद्या का क्षेत्र क्या है? उस समय लोग विद्या में रत रहा करते थे। विद्या में रत रहने से हमें देवलोक मिलेगा, ऐसी उनकी धारणा थी। विद्या का क्या अर्थ है? केवल भाँति-भाँति की उपासना पद्धति, कोरा सिद्धान्त, इसको कहा गया है विद्या !

ठीक है, हम अविद्या में लगे हैं, परन्तु विद्या में किसलिये लगे हैं, इस प्रयोजन को हम भूल जाते हैं। यहाँ पर यह कहा गया कि अन्धं तम: ...। माने जो अविद्या में रत हैं, जो अविद्या की उपासना करते हैं, वे गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं। किन्तु जो विद्या की उपासना करते हैं, वे कहाँ जाते हैं? वे लोग ततो भूय ... अर्थात् इनकी अपेक्षा अधिक गहरे अन्धकार में जाते हैं।

जो केवल कर्म में लगे हैं, ठीक है, वे गहरे अन्धकार में गये, वे ऐसे लोक में गये, जहाँ आत्मतत्त्व नहीं है, यह बात समझ में आयी, पर जो लोग विद्या में रत हैं, वे लोग इनकी अपेक्षा कहीं अधिक गहरे अन्धकार में जाते हैं, यह तो उलटी बात लगती है कि ये कैसे गहरे अन्धकार में जाते हैं। यहाँ पर एक-दो उदाहरण देने से बात समझ में आ जायेगी। विद्या और अविद्या अन्धे और लंगड़े जैसी हैं। अविद्या के पास चलने के लिये पैर हैं, उसमें कर्तृत्व है, उसके पास क्रिया है, किन्तु देखने की आँखें नहीं है। विद्या के पास देखने की आँखें है, पर चलने के पैर नहीं हैं। इन दो स्थितियों की आप कल्पना कीजिए।

अविद्या उपासक कर्म कर रहा है, लेकिन लक्ष्य स्पष्ट नहीं है। जो विद्या में लगा है, उसको लक्ष्य पता तो है कि जाना यहाँ है, पर वह जा नहीं सकता है, जाने की सम्भावना उसमें नहीं है। क्योंकि उसके पास आगे बढ़ने की क्रिया नहीं है, उसने क्रिया की, पैर की बिल्कुल उपेक्षा कर दी है। यदि केवल सैद्धान्तिक रूप से जान ले कि यह लक्ष्य है और उधर जाने की चेष्टा ही न करे क्योंकि उसके पास जाने की सामर्थ्य नहीं है और इसलिए वह कहे कि बस मैं केवल लक्ष्य का विचार करता रहूँगा, तो यह तो मानों और भी गहरे अन्धकार में जाना हुआ। वह जो अविद्या में है, जिसके पास आँखें नहीं हैं, वह चल तो रहा है। चलते-चलते सम्भव है एक दिन वह लक्ष्य के पास पहुँच भी जाय। परन्तु यह जो दूसरा व्यक्ति है, जो चलता नहीं है, केवल विचार ही करता रहता है, केवल देखता ही रहता है, वह व्यक्ति मानों और भी गहरे अन्धकार में जायेगा। लक्ष्य को जान करके भी जो लक्ष्य के प्रति निष्ठावान नहीं है, वह व्यक्ति मानो और भी गहरे अन्धकार में जायेगा। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५०७ का शेष भाग

के लिए स्कूल में जाना और पढ़ना एक स्वप्न के समान था, वे लोग अब स्कूल के विद्यार्थी थे।

ज्योतिबा के पिता को भी बहुत धमकियाँ मिलने लगीं। उन्हें कहा गया, "अपने बेटे और बहु को पाठशाला बन्द करने के लिए कहो, नहीं तो तुम्हें जाति से बाहर निकाल देंगे। उनके पिता ने उन्हें पाठशाला बन्द करने के लिए कहा। ज्योतिबा अपने पिता को बहुत मानते थे। किन्तु ज्योतिबा के सामने उन लाखों लोगों की दरिद्रावस्था का चित्र था। उन्हें और उनकी पत्नी को अपने पिता के घर से अलग होना पड़ा।

ज्योतिबा और उनकी पत्नी सावित्री देवी ने शिक्षा के क्षेत्र में और जातिभेद को दूर करने के लिए अनेक कार्य किए और अपना पूरा जीवन देश की सेवा में न्योछावर कर दिया। ○○○

नारी-शक्ति का आदर्श – माँ सारदा

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

(गतांक से आगे)

सहधर्मिणी का कर्तव्य

अब आप देखिए, सहधर्मिणी का क्या तात्पर्य है? इस घटना से स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे देश में सहधर्मिणी की जो धारणा है, वह वाइफ या लाइफ पार्टनर आदि में नहीं आती। माँ सारदा जब छ: वर्ष की थीं, तब उनका विवाह हुआ। विवाह के बाद श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर में आकर विभिन्न प्रकार की साधनाओं में डूब गये। भैरवी आकर उनसे तंत्र की साधनाएँ कराती हैं। फिर जटाधारी आते हैं और वात्सल्य-भाव की साधना कराते हैं। विभिन्न प्रकार की साधनाएँ होने के बाद अन्त में तोतापुरीजी महाराज आकर अद्वैत वेदान्त की साधना कराते हैं। दीर्घकाल श्रीरामकृष्ण देव साधना में डूबे रहे, तब उन्हें संसार का कोई ध्यान नहीं था।

उधर बालिका सारदा किशोरावस्था से यौवन में पहुँचीं। उनकी सहेलियाँ उनसे ठिठोलियाँ करने लगीं – अरे सुना है, सारू का विवाह किसी पगले से हुआ है। इसका पगला पति दक्षिणेश्वर में रहता है। माँ को ये सब बातें सुनकर बुरा लगता।

आप विचार करके देखिए, ये बातें स्वाभाविक हैं। कोई भी ऐसी बालिका, चाहे वह ग्रामीण बाला हो या शहरी, अल्पवय में जिसका विवाह हो गया, क्या उस किशोरी के मन में अपनी कुछ इच्छा-कल्पना नहीं रही होगी? क्या उसके मन में यह इच्छा नहीं होगी कि उसकी भी गृहस्थी बसे, उसका भी परिवार हो, यह स्वाभाविक बात है। संसार की दृष्टि से, तो बिल्कुल सच बात है।

तो क्या श्रीमाँ भी इन्हीं इच्छाओं के साथ बड़ी हुई थीं? नहीं, उनके जीवन में ऐसा नहीं हुआ था। उनके मन में जो स्वाभाविक इच्छाएँ थीं, वे भिन्न प्रकार से थीं। ये बात कैसे पता चली? इस घटना से आपको स्पष्ट हो जायेगा। माँ दक्षिणेश्वर में आयी हैं। १९ वर्ष की युवती हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण देव छत्तीस वर्ष के युवक हैं। अत्यन्त उत्साह से उन्होंने माँ का स्वागत किया, ''अच्छा तुम आ गयी?'' उन्हें बड़े प्रेम से रखा। माँ भी देखकर अवाक् हो गईं, वे सोचने लगीं – लोग इन्हें पागल कहते हैं, पर लोगों की बात बिल्कुल झूठ है। कहाँ पागल हैं ये? ऐसा देव-दुर्लभ पति कौन होगा? ये तो साक्षात् देवता हैं, ईश्वर हैं। ऐसा अद्वितीय प्रेम, ऐसा सद्व्यवहार कहाँ देखने को मिलता है?

श्रीमाँ भगवान श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में उनकी शय्या पर शयन करती थीं। एक दिन की बात है। श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कहा, ''मुझसे तुम्हारा विवाह हुआ है और इस शरीर पर तुम्हारा अधिकार है। पर मैं जगन्माता का चिन्तन करता हूँ, उनके ध्यान में मस्त रहता हूँ। क्या तुम मुझे संसार में खींचने के लिये आयी हो?'' श्रीरामकृष्ण जैसे सिद्ध पुरुष, जिन्होंने जीवन में लम्बे बारह-तेरह वर्षों तक सिद्ध पुरुषों के निर्देश में कठिन साधनाएँ कीं, जिन्होंने भैरवी जैसी तंत्रसिद्धा के निर्देशन में तन्त्र साधना की, तोतापुरी जैसे अद्वैत वेदान्त में प्रतिष्ठित ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ गुरु के निर्देशन में वेदान्त साधना की चरमावस्था निर्विकल्प समाधि को प्राप्त किया, ऐसी उच्च अवस्था प्राप्त पुरुष के मन में यदि ईश्वर चिन्तन की बात आये, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु एक ग्रामीण बाला, जो खेत में काम करती है, घर के काम करती है, अपने छोटे भाइयों को नहलाती-धुलाती, खिलाती पिलाती है, जिसने कोई साधना नहीं की, कोई शास्त्र नहीं पढ़े, कोई सत्संग नहीं किये, ऐसी श्रीमाँ सारदा ने तत्काल उत्तर दिया, ''नहीं, नहीं, मैं आपको संसार में क्यों खींचने आऊँगी। मैं तो इसलिए आयी हूँ कि आपकी साधना में सहायता कर सकूँ। मेरा केवल यही निवेदन है कि आप मुझे भी अपने साथ उस पथ पर ले चलिये।'' यह है सहधर्मिणी के जीवन का आदर्श। मेरे पति जिस पथ पर चल रहे हैं, वही मेरा रास्ता है, उसी रास्ते से जाकर मैं जीवन में उपलब्धि कर सकती हूँ, यह सहधर्मिणी की भावना होनी चाहिये।

माँ के जीवन की यह घटना भारतीय नारी के लिए आदर्श तो है ही, विश्व की किसी भी नारी के लिये आदर्श है कि वह अपने पति के अनुकूल होकर चले, तो उसका जीवन विकसित होगा, सफल होगा।

नवयौवना थीं श्रीमाँ और श्रीरामकृष्ण देव नवयुवक थे। भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने अपनी और श्रीमाँ की परीक्षा ली। भगवान श्रीरामकृष्ण देव और जगत् जननी माँ सारदा आठ महीने से भी अधिक एक शय्या पर सोते रहे, पर दोनों के मन में किसी भी दिन देह-बुद्धि नहीं आयी।

भगवान श्री रामकृष्ण देव के मन में अगर देह-बुद्धि न आयी हो, तो कौन-सी आश्चर्य की बात है? वेदान्त की साधना

का सार ही है कि मनुष्य अपनी देह-बुद्धि से मुक्त हो जाये। श्रीरामकृष्ण देव ने कठिन साधना करके यह उपलब्धि की थी। वे देह-बुद्धि से ऊपर उठ सके थे। जगत् जननी ने क्या साधना की थी? वे जन्मसिद्ध थीं। सिद्ध होकर जन्म लिया था माँ ने। भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने साधना के द्वारा देहातीत अवस्था प्राप्त की थी, किन्तु जगत् जननी के लिए, श्रीमाँ के लिये यह अवस्था श्वास-प्रश्वास के समान थी।

ऐसा कैसे हुआ? क्या यह मातृत्व के अतिरिक्त अन्य किसी भी भाव के पोषण से सम्भव है? असम्भव है। जब तक नारी के हृदय में यह मातृत्व प्रतिष्ठित न हो, तब तक उसके जीवन में सफल सहधर्मिणी होने का कोई अवसर नहीं है। उन अमेरिकन माताओं से, बहनों से यही बात कही गई।

सहधर्मिणी पर थोड़ा और विचार करके देखें। हमारे भारतीय ऋषियों ने जीवन का लक्ष्य जब मोक्ष रखा, तो उसकी प्राप्ति का उपाय भी उन्होंने बताया। उसकी प्राप्ति के उपाय को सामान्यत: दो भागों में बाँटा गया। एक प्रवृत्ति मार्ग और एक निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति मार्ग अर्थात् जो गृहस्थ जीवन में रहता है, किन्तु अपने कर्तव्य पालन के द्वारा वह भी उसी लोक, उसी ईश्वर, उसी ब्रह्म के पास पहुँचने का प्रयास कर रहा है। निवृत्ति मार्ग में वे साधु-संन्यासी हैं, जो संसार से निवृत्त होकर उस ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। दोनों का लक्ष्य एक ही है। यदि कोई प्रवृत्ति मार्ग में है और जीवन के जिस परम लक्ष्य को वह प्राप्त करना चाहता है, उस लक्ष्य में अगर सहधर्मिणी सहयोग न दे, तो उसका अपना जीवन तो असफल होगा ही, कठिनाई भी होगी और उसके पति का जीवन भी असफल और अपूर्ण रह जायेगा। इसलिये सहधर्मिणी को अपने कर्तव्यों के प्रति बहुत सजग रहना चाहिये।

पाश्चात्य में लोग मोक्ष की धारणा न कर तृप्ति की बात करते हैं। जीवन में तृप्ति कैसे होगी? पति-पत्नी यदि अनुकूल न हों, तो क्या जीवन में तृप्ति सम्भव है? यह बात उन्हें कठिनाई से समझ में आती है। भारतीय ऋषियों ने जब हमारे लिए ये दो मार्ग – प्रवृत्ति और निवृत्ति बनाये, तो उनके स्तर, कई सोपान भी बनाये। इसलिए हमारे यहाँ जीवन के विभिन्न सोलह संस्कार हैं। उनमें विवाह एक अत्यन्त पवित्र, धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कार है। हमारे यहाँ विवाह दो व्यक्तियों एक लड़की और एक लड़के में सहजीवन बिताने का अनुबन्ध नहीं है, यह जीवन का अत्यावश्यक संस्कार और अद्भुत मिलन है। पाश्चात्य में इसकी धारणा बिल्कुल नहीं है।

हमारे ऋषियों ने विवाह की हमें जो धारणा दी है, वह क्या है? हमारे ऋषियों ने, शास्त्रों ने हमें जो विवाह का आदर्श बताया, वह जगत् जननी माँ सारदा और भगवान श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रकट हआ है। विवाह मिलन है, तो किस स्तर पर मिलन है? हमारे यहाँ हिन्दू विवाह में जो मिलन के स्तर हैं, वही विवाह का वास्तविक अर्थ है। एक-न-एक दिन सम्पूर्ण विश्व इसको अवश्य स्वीकार करेगा। उस मिलन के स्तरों को स्वीकार किये बिना विश्व में नारी और पुरुष, कभी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

वैवाहिक मिलन का क्या तात्पर्य है? विवाह के मिलन को कुछ लोग तीन और कुछ चार भागों में विभाजन करते हैं। विवाह-मिलन का एक स्तर पति-पत्नी के शारीरिक स्तर पर है। प्रकृति का नियम है। प्रकृति ने सभी पशु-पक्षी, मानव, इन सब में नर-मादा, स्त्री-पुरुष के मिलन की प्रवृत्ति प्रदान की है। यह एक स्तर का मिलन है। किन्तु यह अत्यन्त स्थूल निम्न स्तर का मिलन है। पशु और मनुष्य में इसमें कोई अन्तर नहीं है। पशुओं की भी संतान होती हैं, मनुष्यों की भी सन्तान होती हैं। इसके बाद जिनका विवाह विकसित होकर पूर्णता की ओर जा रहा है, ऐसे पति-पत्नियों में मानसिक मिलन होता है। मन के स्तर पर मिलन। जिनके जीवन में मन के स्तर पर मिलन है, ऐसे दम्पती कम हैं और बहुत सुखी हैं।

मुझे अपने जीवन में कुछ ऐसे दम्पतियों को देखने का अवसर मिला है, जिनमें परस्पर बहुत सुन्दर मन का मिलन है। पति-पत्नी के विचार एक हैं, उनकी रुचियाँ एक हैं और एक-दूसरे के प्रति उनमें समर्पण है। समर्पण इसलिए है कि आपस में उनके पास सहभागी होने के विचार हैं। एक-दूसरे से देने और पाने के साधन हैं। शरीर से ऊपर उठकर मन के स्तर पर। जहाँ मन नहीं मिलता है, उन दम्पतियों को देखिए, वे नारकीय जीवन जी रहे हैं।

आज कानून की सुविधाएँ लेकर लोग विवाह-विच्छेद कर लेते हैं। वे लोग भले ही शरीर से अलग रह सकते हैं, किन्तु वे स्मृतियाँ कहाँ जायेंगी ! वे स्मृतियाँ सारे जीवन सालती रहती हैं। ऐसे लड़के-लड़कियों को मैं जानता हूँ, जिन्होंने डायवोर्स ले लिया, पुनर्विवाह किया, फिर भी आक्रोश रह गया। यह इसलिए हुआ कि उनका मानसिक मिलन नहीं हुआ। जो दम्पती मानसिक स्तर पर भी एक हैं, वे उनसे हजार गुना स्थिति में सुखी हैं, जो केवल शारीरिक स्तर के मिलन में हैं। इसके बाद इससे भी अधिक उन्नत स्तर होता है, जिसमें नारी की उदारता और दिव्यता अधिक प्रकट होती है। **(क्रमशः)**

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (५)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक श्रृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भों को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

लोग भोग्य विषयों में कितने प्रबल आनन्द का अनुभव करते हैं! अपनी इच्छित तथा इन्द्रियों को प्रिय लगनेवाली चीजों के लिए लोग कहीं भी जाने को और कोई भी खतरा उठाने को तैयार रहते हैं। भक्त को चाहिए कि वह भी भगवान के लिये इसी तरह के प्रचण्ड प्रेम का अनुभव करे।... जब पुरुष नारियों के लिये और नारियाँ पुरुषों के लिये वास्तविक तथा प्रबल प्रेम का अनुभव करती हैं; तब उन्हें ऐसे किसी भी व्यक्ति की उपस्थिति अच्छी नहीं लगती, जिनसे उनका प्रेम नहीं होता। ठीक इसी प्रकार, जब पराभक्ति हृदय पर अधिकार जमा लेती है, तो अन्य अप्रिय विषयों के प्रति वैसी ही अरुचि पैदा हो जाती है। यहाँ तक कि उसके लिये प्रेमास्पद भगवान के अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर बातचीत करना भी असह्य हो उठता है। 'केवल उसी का ध्यान करो और अन्य सब बातें त्याग दो।' जो लोग केवल उन्हीं की चर्चा करते हैं, वे ही भक्त को मित्र के समान प्रतीत होते हैं; और जो लोग अन्य विषयों की चर्चा करते हैं, वे उसे शत्रु-जैसे लगते हैं।[१]

उपनिषद् आगे एक व्यावहारिक मार्ग दिखाती है। यहाँ उसकी भाषा अत्यन्त आलंकारिक हो जाती है।

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः।
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति
वः पाराय तमसः परस्तात्।।२.२.६।।

जिस प्रकार रथ के पहिये में समस्त अरें जाकर उसके केन्द्र या धुरी पर मिलती हैं; वैसे ही इस शरीर की समस्त नाड़ियाँ एक स्थान में जाकर मिलती हैं। वहीं – हृदय में ॐ पर ध्यान करो। तुम्हारी सफलता की कामना करता हूँ। हे सौम्य, तुम लक्ष्य को प्राप्त कर लो; तुम समस्त अन्धकार के परे जाकर उनकी उपलब्धि करो।

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।।
मनोमयः प्राण-शरीर-नेता
प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद्-विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा
आनन्द-रूपममृतं यद्-विभाति।।२.२.७।।

जो सर्वज्ञ अर्थात सब कुछ जाननेवाला है, उसकी महिमा पृथ्वी, आकाश तथा सर्वत्र व्याप्त है। वह जो मन हुआ है; प्राण हुआ है; वह जो शरीर का संचालक है; वह जो जीवन के ऊर्जा-स्वरूप अन्न में स्थित है। ऋषियों के सर्वोच्च ज्ञान के द्वारा उन आनन्द स्वरूप की अनुभूति करो; जो अमृतत्व के रूप में विराजित हैं।

दो शब्द हैं – 'ज्ञान' और 'विज्ञान'। ज्ञान को आधुनिक भाषा में भौतिक विद्या कहा जा सकता है; उसका तात्पर्य केवल बौद्धिक ज्ञान से है – और विज्ञान का अर्थ है – अनुभूति। बौद्धिक ज्ञान के द्वारा परमात्मा को नहीं जाना जा सकता है। जिस व्यक्ति ने उस सर्वोच्च ज्ञान [उपनिषद्] के द्वारा उस [आत्मा] की अनुभूति कर ली है; उस व्यक्ति की क्या दशा होगी?

भिद्यते हृदयग्रन्थि-
श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि
तस्मिन् दृष्टे परावरे।।२.२.८।।

जब तुम सत्य का साक्षात्कार कर लेते हो, तो तुम्हारे हृदय की सारी गाँठें कटकर अलग हो जाती हैं – और सारा अन्धकार सदा के लिए लुप्त हो जाता है।[२] 'जब उस दूर से भी दूरतम तथा निकट से भी निकटतम परम तत्त्व के दर्शन

१. वही, खण्ड ४, पृ. ५४-५५

२. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २३८-३९

होते हैं; तो सदा-सर्वदा के लिये सारी शंकाएँ दूर हो जाती हैं, हृदय की सारी कुटिलताएँ नष्ट हो जाती हैं, सभी बन्धन कट जाते हैं और सभी कर्मों का क्षय हो जाता है।' यही धर्म है और यही धर्म का सर्वस्व है। बाकी सब कुछ केवल मत-मतान्तर, कोरे सिद्धान्त अर्थात् उस परम तत्त्व की प्रत्यक्ष अनुभूति के भिन्न-भिन्न मार्ग मात्र हैं।[३]

धर्म विद्वत्ता पर निर्भर नहीं करता। वह स्वयं अपनी आत्मा है, ईश्वर है। सामान्य किताबी ज्ञान या वाक्पटुता से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। तुम सबसे बड़े विद्वान् के पास जाओ और उनसे 'आत्मा' का आत्मा के रूप में ध्यान करने को कहो; वे नहीं कर सकते। बिना प्रशिक्षण के आत्मा की कल्पना असम्भव है। अत: तुम चाहे जितने भी धर्मशास्त्र पढ़ लो – तुम भले ही एक बड़े दार्शनिक या उससे भी बड़े धर्मशास्त्री बन जाओ, परन्तु वेदान्ती कहेगा, 'ठीक है, पर उसका धर्म से कोई लेना-देना नहीं।' क्या तुम 'आत्मा' का आत्मा के रूप में चिन्तन कर सकते हो? केवल तभी सारी शंकाएँ मिटेंगी और हृदय की सारी कुटिलताएँ सीधी होंगी; जब मनुष्य की आत्मा और परमात्मा एक-दूसरे के सम्मुखीन होंगे, केवल तभी सारे भय तथा सन्देह सदा-सर्वदा के लिए लुप्त हो जायेंगे।[४]

अनुभूति ही धर्म का प्राण है। हर कोई कुछ आचारों तथा अनुष्ठानों को अपनाकर चल सकता है। हर कोई कुछ विधि-निषेधों का पालन करने में सक्षम है, परन्तु भला कितने लोग अनुभूति के लिए व्याकुल होते हैं? यह तीव्र व्याकुलता – ईश्वर-प्राप्ति या प्रत्यक्ष आत्मबोध के लिये उन्मत्तता – यही सच्ची आध्यात्मिकता है।[५]

आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति ही व्यावहारिक धर्म है। बाकी सभी चीजें वहीं तक ठीक हैं, जहाँ तक कि वे इस महान् लक्ष्य की ओर ले जाती हैं। इस अनुभूति को पाने का उपाय है – त्याग और ध्यान – समस्त इन्द्रिय-सुखों का त्याग करना और उन ग्रन्थियों तथा शृंखलाओं का उच्छेदन, जो हमें भौतिकता से बाँधती हैं। 'मैं भौतिक वस्तुएँ नहीं चाहता, ऐन्द्रिक-जीवन नहीं चाहता, अपितु कुछ उच्चतर वस्तु चाहता हूँ।' यही त्याग है। उसके बाद, ध्यान की शक्ति से उस पुराने अनिष्ट को दूर कर दो।[६]

चित्त शुद्ध करो – यही सम्पूर्ण धर्म है। जब तक हम अपने मन की मलिनता को मिटा नहीं लेते, तब तक हम सत्य को उसके यथार्थ रूप में देख नहीं सकते।.. एक शिशु डकैती होते हुए देखता है, परन्तु यह उसके लिये कोई मायने नहीं रखता।[७] एक पापी व्यक्ति इस संसार को नरक के रूप में देखता है, जबकि एक सिद्ध महापुरुष इसे साक्षात् परमात्मा के रूप में देखते हैं। बस, केवल तभी उनके नेत्रों पर से आवरण हट जाता है और शुद्ध-पवित्र हुए व्यक्ति देखते हैं कि उनकी पूरी दृष्टि ही बदल गयी है। जो दु:स्वप्न उन्हें लाखों वर्षों से पीड़ित कर रहे थे, वे सभी लुप्त हो चुके हैं।[८]

यदि तुम किसी चित्र-पहेली में छिपी हुई वस्तु को एक बार भी देख लो, तो तुम उसे हर बार देख सकोगे। इसी प्रकार यदि तुम एक बार पवित्र और मुक्त हो जाओ, तो तुम अपने चारों ओर के जगत् में सर्वत्र केवल पवित्रता एवं स्वाधीनता ही देख सकोगे।... अब तुम्हारा सच्चा स्वरूप अभिव्यक्त हो चुका है, जो आकाश से भी उच्चतर है, हमारे इस ब्रह्माण्ड से भी अधिक परिपूर्ण है और सर्वव्यापी आकाश से भी अधिक व्यापक है। केवल तभी तुम (पूरी तौर से) निर्भय तथा मुक्त हो सकते हो। तब सारी भ्रान्तियाँ दूर हो जाती हैं, सारे दु:ख-कष्ट लुप्त हो जाते हैं और सारा भय चिरकाल के लिए चला जाता है। तब जन्म और उसके साथ मृत्यु भी न जाने कहाँ चले जाते हैं; दु:ख और उसके साथ ही सुख भी भाग जाते हैं। पृथ्वी के साथ ही स्वर्ग; और शरीर के साथ ही मन भी लुप्त हो जाता है।... उसी क्षण हृदय की सभी ग्रन्थियाँ कटकर छिन्न हो जाती हैं, उसके भीतर का सारा टेढ़ापन सीधा हो जाता है और यह संसार स्वप्न के समान उड़ जाता है। इसके बाद जब हम जागते हैं, तो हमें यह सोचकर आश्चर्य होता है कि हम ये कैसे निरर्थक स्वप्न देख रहे थे।... यह सारा ब्रह्माण्ड मानो लुप्त हो जाता है – रूपान्तरित होकर एक अनन्त, अखण्ड अपरिवर्तनशील सत्ता में परिणत हो जाता है; और हमें बोध हो जाता है कि हम उस सत्ता से अभिन्न हैं।[९] **(क्रमशः)**

३. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ७, पृ. १८५-८६

४. वही, खण्ड १, पृ. २७६

५. वही, खण्ड ६, पृ. १६

६. वही, खण्ड ३, पृ. १७९

७. वही, खण्ड ७, पृ. ९०

८. वही, खण्ड २, पृ. ३४

९. वही, खण्ड २, पृ. ३४; खण्ड ७, पृ. ९०

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (९)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

इस स्थायी भवन के शुभारम्भ का दिवस १ अक्तूबर १८९६ को निर्धारित किया गया था। इसके व्यय का वहन स्वामी विवेकानन्द की पुस्तिकाओं के विक्रय तथा दान से प्राप्त राशि से किया जाना था। वार्षिक सदस्यता शुल्क १ डॉलर रखने का भी प्रस्ताव था। सर्कुलर के शेषांश में लिखा गया था, ''यदि न्यूयॉर्क एवं अन्य नगरों में स्थित स्वामी विवेकानन्द के मित्रों की इस कार्य में रुचि हो, तो वे श्रीमान् गुडविन से सम्पर्क कर सकते हैं।''

न्यूयॉर्क स्थित स्वामी विवेकानन्द के मित्र इस प्रस्ताव से प्रसन्न हो गए। गुडविन न्यूयॉर्क कार्य का प्रभार ग्रहण करें, इस विषय में भी लोगों को कोई आपत्ति नहीं थी। गुडविन श्रीमती बुल को १९ अगस्त के पत्र में लिखते हैं, ''कुमारी वाल्डो ने अभी ही मुझसे कहा कि उन्हें आशा है कि न्यूयॉर्क केन्द्र की बागडोर पूर्णतया मेरे हाथों रहेगी।'' न्यूयॉर्क वेदान्त सोसायटी की सचिव मैरी फिलिप्स ने भी लिखा था, ''हम प्रसन्न हैं कि एक स्थायी प्रधान कार्यालय हो रहा है और गुडविन उसके प्रभारी होंगे।''

किन्तु सर्कुलर बाँटने के बाद श्रीमती बुल ने अपना मन बदल दिया। वे चाहती थीं कि गुडविन शीघ्र इंग्लैंड वापस लौट जाएँ और जब स्वामी विवेकानन्द स्विट्जरलैंड से वापस लौटें, तब वे उनके साथ रहें। उनका मानना था कि गुडविन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है – स्वामीजी के प्रवचन और कक्षाओं को लिपिबद्ध करना। उन्होंने लेगेट दम्पती और जोसेफीन मैक्लाउड को लिखा था, ''वेदान्त के स्थायी साहित्य के रूप में उनके व्याख्यान और संभाषणों को सुरक्षित रखना चाहिए।'' इसलिए इंग्लैंड में गुडविन के रहने की आवश्यकता थी।

श्रीमती बुल ने निर्णय लिया कि स्वामी सारदानन्द को इतना शीघ्र, अर्थात १ अक्तूबर को न्यूयॉर्क में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए गुडविन जब तक इंग्लैंड में हैं, तब तक स्वामी सारदानन्द जी बोस्टन में ही रहें। श्रीमती बुल को यह आशंका थी कि यदि गुडविन न्यूयॉर्क में रहकर नवीन भवन का कार्यभार नहीं संभालते, तो पुराने संस्था-भवन में जो अव्यवस्थाएँ थीं, वे वैसी ही बनी रहेंगी।

किन्तु इस परिवर्तन की सूचना कुमारी वाल्डो एवं न्यूयॉर्क वेदान्त सोसायटी के कार्यकर्ताओं को नहीं दी गई। वे उत्साहपूर्क १ अक्तूबर को स्वामी सारदानन्द के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें जब गुडविन के पत्र से यह ज्ञात हुआ कि स्वामी सारदानन्द शायद नवम्बर की शुरुआत में आएँगे, तो वे हतोत्साह हो गए।

कुमारी वाल्डो और श्रीमती बुल तथा न्यूयॉर्क और बोस्टन के बीच जो पुराना विद्वेष था, वह पुनः भभक उठा। न्यूयॉर्क समुदाय के लोगों ने अपने प्रति किए गए असामान्य व्यवहार का घोर विरोध किया। उन्होंने वेदान्त कक्षाओं के लिए बहुत पूछताछ की थी और सितम्बर में होने वाली कक्षाओं और पुस्तकालय के बारे में अन्य लोगों को भी उत्साहपूर्वक जानकारी दी थी।

इस अनबन की स्थिति में एक और गम्भीर समस्या खड़ी हो गई न्यू हेम्पशायर के लिस्बोन शहर में। स्वामी सारदानन्द और गुडविन इस छोटे-से पर्यटन-स्थल में कुछ दिन अवकाश के लिए गए थे। स्वामी सारदानन्द को कुछ लोगों के सम्मुख धर्म विषय पर अनौपचारिक भाषण देने के लिए कहा गया। इस विषय में गुडविन २२ सितम्बर को श्रीमती बुल को लिखते हैं, ''कार्यक्रम के अन्त में श्वास क्रिया के बारे में एक प्रश्न पूछा गया। किन्तु जिस प्रकार प्रश्न पूछा गया था, उन्हें (स्वामी सारदानन्द जी को) उसका उत्तर टाल देना चाहिए था। 'स्वामी, यदि आप इस विषय में कुछ कहना चाहते हैं, तो अन्य समय कहिए।' किन्तु उन्होंने उस विषय को पूरा लिया और उसकी व्याख्या भी की। लोगों से इसके अभ्यास के बारे में 'कुछ' कहा तो गया, किन्तु उस विषय की पर्याप्त जानकारी नहीं दी गई।

''सही हो या गलत, इस बात को लेकर मैं बहुत

चिन्तित हूँ। स्वामी विवेकानन्द ने मुझे स्वामी सारदानन्द को नीतिगत मामलों में सहायता करने के लिए भेजा है। स्वामी सारदानन्द जी का स्वामी विवेकानन्द के प्रति बहुत आदर है और मुझे ऐसा लगता है कि जब तक वे अपने लिए एक निर्दिष्ट प्रणाली नहीं चुन लेते, उन्हें स्वामीजी की इन बातों का पालन करना चाहिए, भले ही एक संन्यासी के रूप में उन्हें स्वाधीनता हो या नहीं। राजयोग के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द मेरी इस बात से सहमत थे कि जहाँ तक सम्भव हो, इसे कभी भी प्रवचन-कक्षाओं में नहीं सिखाना चाहिए और मुझे विश्वास है कि आप भी इससे सहमत होंगी...मैंने कई बार यह बात स्वामी सारदानन्द जी से कही है और वे भी यही मानते हैं। पर अब इसका मैं क्या मतलब निकालूँ कि उन्होंने हॉलीडे होटल में कुछ दर्जन-भर ऐरे-गैरे लोगों को राजयोग के अभ्यास के बारे में पर्याप्त-भर कह तो दिया, किन्तु उसके वैज्ञानिक पक्ष के बारे में नहीं कहा। यह पहली बार नहीं है कि उन्होंने मेरी सलाह की पूरी तरह से उपेक्षा की हो। मुझे लगता है कि स्वामी विवेकानन्द ने जो मुझे स्वामी सारदानन्द की कार्य-व्यवस्था का दायित्व दिया है, कुमारी वाल्डो ने उसकी उपेक्षा की है। इस परिस्थिति में न्यूयॉर्क में उनके कार्य-व्यवस्था की जवाबदारी लेना और उसमें भी कुमारी वाल्डो का हस्तक्षेप सहना – मेरे लिए मूर्खता होगी। आपको शायद ही समझ में आए कि राजयोग को मैं बहुत गम्भीरतापूर्वक लेता हूँ। इस बारे में आप मुझे कट्टर समझ सकती हैं। यदि ऐसा है, तो मैं स्वामी विवेकानन्द के साथ रहने योग्य नहीं हूँ, पर ऐसा नहीं है। मैंने इस मार्ग के परिणामों का अच्छी तरह अध्ययन किया है और इसमें जो विघ्न-बाधाएँ हैं, उन तथ्यों के आधार पर ही अपने निर्णयों पर पहुँचा हूँ।

यदि मुझे इंग्लैंड जाना है, तो इसमें थोड़ा-सा भी विलम्ब करना ठीक नहीं होगा । मैं भी अगले सप्ताह वहाँ जाने की बात का समर्थन करता हूँ।

एक बात मैं और कहना चाहता हूँ। मैंने यहाँ जो कुछ भी कहा है, इसका प्रयोजन स्वामी (सारदानन्द) के ऊपर विचार व्यक्त करना नहीं है। मैं पूरा दोष कुमारी वाल्डों को ही देता हूँ, स्वामी को नहीं।''

स्वामी सारदानन्द के राजयोग की कक्षाओं से कुमारी वाल्डो का क्या लेना-देना, यह प्रश्न हो सकता है। कदाचित् उन्होंने स्वामी सारदानन्द को गुडविन की अधिकार सम्बन्धी बातों को पूर्णतया न मानने के लिए कहा हो। **(क्रमश:)**

करो अपना सर्वस्व समर्पण, भक्ति शान्ति सुख पाओ

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

रंगूजी नामक एक व्यक्ति संत तुकाराम के पास आया और उसने मंत्र-दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की। तुकारामजी ने उसे अन्य शिष्यों के साथ मठ में रहने को कहा। तीन वर्ष तक मठ में रहने के बाद भी संत द्वारा उसकी ओर ध्यान न देने पर वह संत रामदास के पास गया। उसने रामदासजी से भी दीक्षा देने की विनती की। उसने यह भी बताया कि तीन वर्ष तक संत तुकाराम से अनुग्रह न मिलने के कारण वह उनके पास आया है। तब रामदासजी ने बताया, ''गुरु और शिष्य की सोच अलग-अलग होती है। जब तुम बाजार जाते हो, तो कौन-सी चीज खरीदनी अच्छी होगी, यह सोचकर ही खरीदते हो। मटका खरीदते समय उसे ठोक-पीटकर ही खरीदा जाता है। इसी प्रकार गुरु भी शिष्य का पहले आकलन करते हैं कि क्या वह दीक्षा देने की दृष्टि से सत्पात्र है या नहीं।'' उन्होंने आगे कहा, ''तुम मठ में अन्य शिष्यों के साथ भजन, संकीर्तन, स्वाध्याय आदि में भाग जरूर लेते थे, किन्तु तुम्हारा सारा ध्यान दीक्षा लेने की ओर ही था। गुरु का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए शिष्य को अपने आप को पूर्ण रूप से समर्पित करना पड़ता है। तुम्हारी साधना अभी कच्ची है। तुम्हारे शरीर में पर्याप्त ऊर्जा का अभाव है। तुम पहले एकचित्त होकर आत्म-चिन्तन करो और समय आने पर तुम पर गुरु-कृपा होगी।''

बात रंगूजी की समझ में आ गई। वह पुन: संत तुकाराम के मठ में गया। पूर्ण आस्था, निष्ठा तथा शुद्ध अन्त:करण से वह भगवद्भक्ति में संलग्न हो गया। अन्तत: तुकारामजी ने मंत्र दीक्षा देकर उसे शिष्य बनाया।

समर्पण का अर्थ है – स्वयं को समग्र रूप से अर्पण करना। 'स्व' अर्थात् अहं भाव या 'मैं'पन का जाना ही समर्पण है। कर्तापन की भावना का पूर्ण रूप से क्षीण होने पर गुरु का अनुग्रह प्राप्त होता है। ○○○

समाचार और सूचनाएँ

केरला बाढ़ राहत कार्य

कर्नाटक और केरला में आई भीषण बाढ़-त्रासदी से प्रभावित क्षेत्रों में रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों ने अगस्त, २०१८ में अपने-अपने क्षेत्रों में राहत-कार्य किये – **रामकृष्ण सारदाश्रम, पोन्नमपेट, रामकृष्ण मिशन विद्यालय, कोयम्बटुर, रामकृष्ण मिशन, हरिपाद, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, कालाडी, रामकृष्ण मठ, कोची, रामकृष्ण मठ, कोइलान्डी, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, कोझीकोड, रामकृष्ण मठ, पालाई, रामकृष्ण मठ, त्रिसुर और रामकृष्ण आश्रम, तिरुवल्ला**। इसमें कई हजार बाढ़-पीड़ितों को चावल, दाल, बिस्कुट, दूध, चाय, चीनी, नारियल, बेडसीट, लुंगी, साड़ी, तावेल, चटाई, बालटी, मग, थाली, आदि खाद्य सामग्री, वस्त्र और खाना बनाने के सामान प्रदान किये गये।

पश्मिच बंगाल के **रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, बाँकुड़ा** ने बाँकुड़ा जिले के २०० बाढ़-पीड़ित परिवारों में ७ से २९ अगस्त तक राहत-कार्य किया और निम्नलिखित वस्तुएँ वितरित कीं – चावल ५५० किलो, दाल २१० किलो, चिउड़ा ५०० किलो, गुड़ १९६ किलो, बिस्कुट २०० पैकेट, टार्च ७२, दियासलाई २०४, मोमबत्ती, २०४, साड़ी ४०, बेडसीट ८०, तारपोलीन १६, प्लास्टिक सीट २३ और हैलोजन टेबलेट ४०००। **रामकृष्ण मिशन, झाड़ग्राम** ने झाड़ग्राम शहर के बाढ़-पीड़ित ६ वार्डों में ७६०० लोगों को अन्न-भोजन और साड़ी, धोती, लुंगी, तारपोलीन और खाने बनाने की सामग्री वितरित की।

रामकृष्ण मिशन, शिलांग में २७ अप्रैल, २०१८ को प्रात: ९ बजे स्वामी विवेकानन्द के शिलांग आगमन की ११७वीं वर्षगाँठ और आश्रम के वार्षिकोत्सव समारोह आयोजित हुए। 'स्वामी सारदानन्द भवन' (कौशल विकास भवन) का उद्घाटन रामकृष्ण मठ-मिशन के सह-संघाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज और मेघालय विधान सभा के प्रवक्ता श्री डॉ. डोनकुपर रॉय ने किया। इस उपलक्ष्य में एक स्मारिका का विमोचन भी प्रवक्ता महोदय द्वारा किया गया। सभा को सह-महासचिव स्वामी अभिरामानन्द जी महाराज और बर्लिन सेन्टर के मिनिस्टर इनचार्य स्वामी वाणेशानन्द जी ने सम्बोधित किया। अपराह्न की सभा को मेघालय के राज्यपाल श्री गंगा प्रसाद जी और एन.इ.एच.यू के कुलपति प्रो. हेनरी लेमिन, स्वामी अच्युतेशानन्द जी महाराज आदि ने किया। २८ अप्रैल को धर्मसभा हुई और २९ को भक्त-सम्मेलन हुआ, जिसमें २०० भक्तों ने भाग लिया।

रामकृष्ण विवेकानन्द विद्यापीठ, बिजुरी में २१ जुलाई, २०१८ को आदर्शोन्मुखी शिक्षा और व्यक्तित्व विकास पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर के सचिव स्वामी सेवाव्रतानन्द जी, रामकृष्ण मठ, नागपुर के स्वामी ज्ञानगम्यानन्द जी, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने व्याख्यान दिये।

२३ जुलाई, २०१८ को प्रात: १० बजे स्कूल-परिसर में संन्यासियों, स्कूल के संचालकों, शिक्षक-शिक्षिकाओं और प्रतिनिधि छात्र-छात्राओं ने वृक्षारोपण किया।

शाम ५ बजे विद्यापीठ का स्थापनोत्सव समारोह वहाँ के प्रेक्षागृह में मनाया गया। इस कार्यक्रम में छात्र-छात्राओं, शिक्षक-शिक्षिकाओं के अतिरिक्त काफी संख्या में अभिभावकों ने भी भाग लिया। दीप-प्रज्ज्लन और मंगलाचरण और अतिथियों के स्वागतोपरान्त विद्यापीठ की प्राचार्या श्रीमती गायत्री जी. विद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत कीं, जिसमें सालभर में बच्चों द्वारा राज्य तथा राष्ट्रीय कार्यक्रमों में विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त विशेष उपलब्धियों का उल्लेख किया। लगभग ४ घंटे तक बच्चों ने बहुत सुन्दर विभिन्न प्रकार के नृत्य, गीत, नाटक आदि प्रेरणादायक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। बीच-बीच में उपरोक्त संन्यासियों, सेल के अधिकारियों, रामकृष्ण सेवा समिति, बिलासपुर के सचिव श्री सतीश द्विवेदी, विद्यापीठ के निदेशक श्री सुरेश चन्द्राकर, श्री गोपेन्द्र घोष आदि ने अपने सम्बोधन से बच्चों को प्रेरित और उत्साहित किया। ○○○